

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्

नवदेहली

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला

पण्डितवर्यश्रीकान्तपतित्रिपाठिविरचितः

श्रीकान्तकविताकलापः

सम्पादकौ

डॉ० गयाचरण त्रिपाठी

डॉ० चन्द्रभानु त्रिपाठी



श्रीकान्तकविताकलापः

(नूतनसंस्कृतपद्यसंग्रहः)

रचयिता

स्व० पं० श्रीकान्त पति शर्मा त्रिपाठी

व्याकरणोपाध्यायः

संपादकौ

डा० गयाचरण त्रिपाठी

गंगानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठप्राचार्यः

एवं

डा० चन्द्रभानु त्रिपाठी

इलाहाबादमहाविद्यालयसंस्कृतविभागाध्यक्षचरः

श्रीगंगानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्

चन्द्रशेखर आजाद पार्क

प्रयाग-२

गैर्वाणी गौरवग्रन्थमाला

विद्यापीठ की शोधपत्रिका के भाग ४२-४३ से पुनर्मुद्रित

प्रकाशकः
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी
प्राचार्यः
गङ्गानाथझा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्
प्रयाग-२

●

मूल्यम्

●

मुद्रकः
शाकुन्तल मुद्रणालयः
३४, बलरामपुर हाउस
इलाहाबाद



स्वर्गीय पंडित श्रीकान्तपति त्रिपाठी
(जन्म सन् १८९२, निधन सन् १९४९)

कवि-परिचय

स्वर्गीय पंडित श्रीकान्तपति त्रिपाठी मेरे सहोदर ज्येष्ठ भ्राता थे। उनका जन्म सन् १८८२ चैत्र-कृष्ण नवमी, और निधन सन् १८४८ पौष शुक्ल अष्टमी को हुआ। वे निःसन्तान मरे।

गोरखपुर महानगर से ग्यारह मील दक्षिण गोरखपुर-वाराणसी राज्य मार्ग से सटा हुआ, भितहाँ नामक ग्राम है। उस ग्राम में शाण्डिल्य गोत्रीय, त्रिपाठी आस्पद नामा ब्राह्मणों की बस्ती है। उनमें स्वर्गीय पंडित शिवशंकरपति त्रिपाठी एक यशस्वी पुरुष हुये हैं। उन्हें संस्कृत की विद्या अपने पूर्वपुरुषों की परम्परा से प्राप्त हुई थी। त्रिपाठी जी ने सनातनधर्म-कल्पद्रुम नामक पुस्तक का प्रणयन और प्रकाशन किया था, जिसमें वेदों की ऋचाओं के आधार पर मूर्ति पूजा का प्रतिपादन किया गया था। उन दिनों आर्य समाज के प्रचार के कारण मूर्ति पूजा का खंडन-मंडन चल रहा था। शिवशंकर जी अपने अपने प्रखर पांडित्य और धवल चरित्र के कारण स्थानीय चौरासी गांवों के मंडल में अत्यन्त श्रद्धा और पूज्य बुद्धि से देखे जाते थे। घर धन-धान्य से भरा पूरा था। उनका सारा समय अपनी जमींदारी के समुचित प्रबन्ध, गरीबों की सहायता और संस्कृत के विद्यार्थियों को पढ़ाने में ही व्यतीत होता था।

शिवशंकर जी के दो पुत्र हुए—ज्येष्ठ स्वर्गीय श्रीकान्तपति त्रिपाठी और कनिष्ठ न्यायमूर्ति श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी।

श्रीकान्त जी ने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज काशी से व्याकरणाचार्य और साहित्याचार्य को उपाधियाँ अर्जित की थीं। अंग्रेजी राज्य था। संस्कृत कालेज के प्रिंसपल सर आर्थर वेनिस थे। श्रीकान्त जी उनके प्रिय छात्र थे और उन्हीं की प्रेरणा से उन्होने अंग्रेजी का भी सम्यक् ज्ञान अर्जित किया था। महामहोपाध्याय पंडित दामोदर शास्त्री और व्याकरणकेसरी पंडित रामभवन उपाध्याय श्रीकान्त जी के गुरु थे। किन्तु उन्हें संस्कृत में काव्य रचना को प्रेरणा तत्कालीन कवि-चक्रवर्ती महा महोपाध्याय पंडित देवीप्रसाद शुक्ल से मिली। श्रीकान्त जी ने अपने छात्र जीवन में ही "बालगीतम्" नामक पुस्तक का प्रणयन और प्रकाशन किया था। इस पुस्तक के द्वारा उनको विद्वत् समाज में ख्याति प्राप्त हुई।

श्रीकान्त जी की प्रकीर्ण कविताओं का एक संग्रह मेरे पास पड़ा हुआ था। उस संग्रह का प्रकाशन संस्कृत के किसी मान्य केन्द्र के द्वारा ही समीचीन होगा-ऐसा

मेरा विचार था। मैंने जब इस बात की चर्चा अपने मित्र डॉ० श्री गयाचरण त्रिपाठी जी से की जो स्थानीय केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के प्राचार्य हैं तो उनकी नीर-क्षीर विवेकी बुद्धि ने काव्य संकलन को विद्यापीठ के द्वारा प्रकाशित करना उचित समझा। उनके प्रयत्न से मेरे अग्रज की कविताओं का प्रकाशन केन्द्राय विद्यापीठ के द्वारा हो रहा है। यह मेरे लिए अत्यन्त प्रसन्नता की बात है, क्योंकि मैं अपने भ्रातृ-ऋण से मुक्त हो रहा हूँ।

मैं गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ और विशेषकर उसके प्राचार्य डॉ० गयाचरण जी त्रिपाठी को श्रीकान्तकविताकलापः के प्रकाशन के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

गंगा आश्रम
१७ कमला नेहरू मार्ग, इलाहाबाद

न्यायमूर्ति हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी
१६-१०-८६

FOREWORD

We are extremely happy to place in the hands of the lovers of Sanskrit poetry a collection of the poems of Pt. Shrikant Pati Tripathi, a modern poet of Sanskrit belonging to the Distict of Gorakhpur in Uttar Pradesh. Pt. S. K. P. Tripathi was educated at the Govt. College Varanasi. He derived his inspiration of composing Sanskrit poetry from his senior contemporary, Pt. Devi Prasad Shukla who was an *ex tempore* poet and is said to deliver spaeches in versified Sanskrit.

Pt. Shrikant Pati Tripathi became teacher of Sanskrit grammar at the Sanskrit Pāṭhaśālā founded by his ancestors in his native village Bhitawān. Yet amidst the chores of his daily academic and family duties, he could fiind sufficient time to compose beautiful poems in Sanskrit in the early part of his life. From the date given by the poet in his Sanskrit preface it appears that the present collection was complete in the year 1928 A. D., i. e. when the poet was just 36 years old. It seems that he started composing Sanskrit poems while he was still a student at Varanasi and continued this habit for a number of years later as well while serving as a teacher in his village. He lived not-too-long a life of 56 years. Nothing is, however, known about his compositions during the last 20 years of his life.

These are thus the writing of a young poet. They unmistakably exude the charm and feshness of youth. The feelings, sentiments and reactions of a young and tender heart are exhibited in these poems in a most captivating manner. The language is lucid and melo-

dius. There is no doubt as to the fact that the poet had a great command over the Sanskrit language and he had mastered the fundamental principles of Sanskrit poetry. There are many verses in this collection which show that he was an erudite Sanskirt scholar who was also capable of composing verses of terse nature with deep significance.

The poetical writings of a number of such poets are languishing all over India and a major portion of them has perhaps already been lost. We are happy to bring this unknown Sanskrit poet to light through this publication and thank Justice Shri H. C. P. Tripathi of Allahabad for making us available the collection of these poems, a fair pressworthy copy of which was prepared by the poet himself, to this Institute for publication. Let the *Sahridayas* be the judge of the rare literary merits of this beautiful collection of Sanskrit poems

G. N. Jha K. S. Vidyapeetha
Allahabad
17th Oct. 1989

G. C. Tripathi
Principal

भूमिका

अस्मिन्पुस्तके प्राय एतदीयकविनिर्मितानां सर्वासामेवाबाल्याद्यावधि प्रभूतानां कवितानां सङ्ग्रह इति समर्थमिदं कविसहृदयाभ्यां कवेराशयं वर्णयितुं क्वचिद्व्युत्क्रमेण विनिवेशेऽपि कवितानां तासु क्रमिकविकाशं संदर्शयितुं चेति। कविविद्यार्थिनामपि ग्रन्थनप्रक्रमदर्शनशीलनाभ्यां महानुपकारो भवेदित्याशास्ते—

मिति चैत्रकृष्ण ६म्यां बुधवासरे
संवत् १६८५ शकेषु १८५०

कविविद्वज्जनवशंवदः
श्रीकान्तपतिशर्मा त्रिपाठी
व्याकरणोपाध्यायः

श्रीकान्तकविताकलापः

समस्यापूर्तयः

मरालकुलभूषणं स्फटिकमालिकालालितं
मुखाब्जमभितः पतन्मधुकरालिझङ्कारितम् ।
नृणामभयदायकं कनककान्ति सारस्वतं
कवीन्द्रकुलदैवतं हृदि चकास्तु दिव्यं महः ॥१॥

अपास्य तिमिरं मतौ स्फुरति यन्नृणां चेतनं
सदा विभजते च यज्जयति चेतनाचेतने ।
प्रतीतिविषयो ध्वनिः सरसवल्लकीव्यञ्जितं
कवीन्द्रकुलदैवतं हृदि चकास्तु दिव्यं महः ॥२॥

कपोलतललोलकुण्डलविलोलितात्मोद्भवं
शरच्छशधरोपमाननरुचाञ्चितेन्दूदयम् ।
कठोरपरिपीनमण्डलमुरोजयुग्मं दधत्
कवीन्द्रकुलदैवतं हृदि चकास्तु दिव्यं महः ॥३॥

सदर्थचयभासुरं प्रणविलोककान्ताकृति
प्रतुष्टसुरसन्नुतं जगदनन्तताधारकम् ।
सुखाम्बुधिमयोत्सवं परतरं रहस्यं चितः
कवीन्द्रकुलदैवतं हृदि चकास्तु दिव्यं महः ॥४॥

जगन्मरुमरीचिकाविलयकारिविज्ञानदं
परात्परतरं परावरमतेः समुन्मीलनम् ।
प्रभावविशदीकृताखिलपदार्थसार्थविलि
कवीन्द्रकुलदैवतं हृदि चकास्तु दिव्यं महः ॥५॥

भ्रुवौ ते लावण्यं किमपि कुटिले प्रापतुरिमे
दृशौ शोणोपान्ते मुखकमलमातापविकलम् ।
परं प्रेमार्दा त्वं परिणमसि कोपेऽपि सरला
न सूते शीतांशोर्द्युतिरनलकीलाजटिलितम् ॥६॥

न वह्नेर्ज्वालातः प्रसरति हिमांशोः शिशिरता
न सूते शीतांशोर्द्युतिरनलकीलाजटिलितम् ।
परं प्रह्लादाय ज्वलनरुचयश्चन्दनकिरो
वियोगिन्यायिन्दुस्तुहिनविधुरोऽङ्गारसदृशः ॥७॥

सौभद्रे लीनमद्रे धृतसशरधनौ बाणधारानिपाता-
द्द्रोणे कोणेऽपयातेऽपि च खलु विरथीभूय कर्णे विवर्णे ।
वीक्ष्याथो दुर्निरीक्ष्यं तमरिजपृथुकं साधु साध्वित्यमर्षा-
द्वर्षोत्कर्षोपवर्षा समजनि ललिता भारती भारतानाम् ॥८॥

सत्पक्षाणां सुमुक्ताहरणनिपुणतादर्शिनां कान्तिभूम्ना
लोकानां दिव्यसौख्यं समुपजनयतां मानसाक्रीडभाजाम् ।
नीरक्षीरं विवेक्तुं विधिविहितसमारम्भशोभाधिकारे
हंसानां कोऽनुयायात्प्रतिपदगतिकं भारती भारतानाम् ॥९॥

मनोऽञ्चेतरस्मिन्फणालीढचन्द्रे स्फुरत्स्वर्णदीवाःप्रणालीनिषिक्ते ।
जटाजूटखण्डे मृणालीभवालं समुत्पादय प्रीतिपद्मं प्रवालम् ॥१०॥

हैमोहीरांशुपूर्णाःशशिशकलशुचीश्चन्द्रकान्तोपलाभा
बिभ्रल्लेखाः किरीटःप्रकटमणिगणप्रोल्लसत्कूटकान्तिः ।
येनास्ते सङ्गृहीतो जनुषि नरवरेणायमेतेन नीता
गङ्गावन्मूर्ध्नि शीता विषमिषकलुषा चेतरस्मिन्फणाली ॥११॥

स्विद्यन्तं चन्द्रचूडं चिरमुरसि कुचाभ्यामियं पीडयित्वा
गौर्य्यालिङ्ग्यैव रोमाञ्चिततनुरमले वक्त्रचन्द्रे पिबन्ती ।

सन्तापं प्राप्य नाशं गमयति सुलभो हेतुरुच्यात्कथं को
नाशे न स्यात्सुधांशुर्यदि सखि न भवेच्चेतरस्मिन्फणाली ।।१२।।

तरुणचम्पकपुष्पमनोहरं शशधरं न सुधामधुराधरम् ।
नववधूवदनं समवेत्य किं भवति तद्ग्रहणाय विधुन्तुदः ।।१३।।

नवबधूवदनोपमसद्द्युतिं सितपटाञ्चलचन्द्रिकयाऽऽवृतम् ।
समवगत्य विधुं रजनीजनीमुखमयङ्ग्रहणाय विधुन्तुदः ।।१४।।

सुविदिता ललिताः सकलाः कलाः किल यतो हि कलाकर एष तत् ।
इति जडः सकलाकुललिप्सया भवति तद्ग्रहणाय विधुन्तुदः ।।१५।।

हारिहीरविशदान्पयःकणान् पल्लवेभ्य उषसि प्रयच्छतः ।
स्वातिमुक्तक तुषारवर्ष ते वारिवाहपदवी दवीयसी ।।१६।।

अन्तराऽपि मुकुलान्यमी द्रुमास्त्वत्कृते समकरन्दबिन्दवः ।
किन्त्वदीनहित शीतवर्ष ते वारिवाहपदवी दवीयसी ।।१७।।

पल्लवाञ्चलधृतान्नु मौक्तिकान् शैशवाद्विलिहते ह्यमी शुकाः ।
किन्त्वयाचक तुषारवर्ष ते वारिवाहपदवी दवीयसी ।।१८।।

भवे भृतेऽस्मिन्नसुभृत्कुलाये पदार्थसार्थैरशिवैः शिवैश्च ।
भवानि वस्तूनि समं भवत्या भवन्ति भव्यानि कृपाकटाक्षैः ।।१९।।

कुर्वन्ति भावा ननु भाविनः किं कानीह वस्तूनि समीप्सितानि ।
कैःपश्यति प्राणभृतो भवानी भवन्ति भव्यानि कृपाकटाक्षैः ।।२०।।

भवन्ति भव्यानि कृपाकटाक्षैर्भवानि भावं परमं लभन्ते ।
सान्निध्यमिद्धं दधते भवत्या वस्तूनि सस्थावरजङ्गमानि ।।२१।।

प्रालेयाद्रेः शिरस्तो निपतति शशिभृन्मुक्तबिन्द्वेकदेशो
गङ्गाथो मानचित्रे लसति समतलेऽधित्यकाग्रामभव्ये ।

राजन्ते निर्झराः षट् तदनु विगलतोऽधोऽस्ति विन्दुर्मसीजः
सूच्यग्रे कूपषट्कं तदुपरि नगरी तत्र गङ्गाप्रवाहः ।।२२।।

विपुलमतिमतां या बुद्धिविद्याप्रतिष्ठा
नरकृतिरपि दिव्यं ख्यापयन्ती विमानम् ।
व्रजति यदि पतत्राभ्यां न चात्यद्भुतं किं
भ्रमति गगनमध्ये कच्छपी पक्षहीना ।।२३।।

आकाशः शस्त्रसङ्काशस्ताराभिः किणलाञ्छितः ।
सूर्य्यचन्द्रक्षुरोद्भ्रान्त्या भेद्यजातप्रवारणम् ।।२४।।

रामोद्वाहे सुरस्त्रीणां मुखबिम्बैरलङ्कृतम् ।
अपश्यञ्छिशवो मुग्धाः शतचन्द्रं नभस्तलम् ।।२५।।

मयूरपिच्छचन्द्राणां वपुषोऽपि स्मरन्त्युत ।
पप्रच्छ राधिका कृष्णं शतचन्द्रं नभस्तलम् ।।२६।।

कं निर्ममे नो सुखिनं विधाता को वेति पृष्टो लघुराह कश्चित् ।
छन्दोऽनुरोधात्पुनरुक्तवादी ककं ककं कं ककक ककं कः ।।२७।।

रथ्याऽऽपणेषु भ्रमतां जनानां केषाञ्चिदार्तौ श्रवणी प्रगृह्य ।
ताम्रारपात्रे ध्वनिराह कश्चिट्ठठं ठठंठं ठठठं ठठं ठः ।।२८।।

रोदनेऽतिनिपुणस्य चिरस्य प्रस्मृतोत्थरभसस्य विलम्बात् ।
बालकस्य रुदतो ध्वनिरासीद् हूं हुँ हूं हुँ हुँ हु हूँहु हुहुँ हुम् ।।२९।।

त्वद्वाजिराजिनिर्द्धूतधूलीपटलसम्भृतात् ।
त्वत्प्रतापौर्वशोषार्तात्समुद्राद्धूलिरुत्थिता ।।३०।।

सूर्याचन्द्रमसोर्यातोरस्तोदयमनन्तरम् ।
शिशुः स्वपितरं प्राह समुदेति रविद्वयम् ।।३१।।

तस्मिँश्चिदम्बरमये परमात्मदेहे
संहारकालकुटिलभ्रुकुटिद्वयाढ्ये ।

कल्पान्तवायुतुलितोऽतुलमानकोऽपि
शैलो बिभर्ति परमाणुसमत्वमेषः ॥३२॥

कृतान्तकल्पा रसपुद्गलानां पिपीलिका राजति शैलतुल्या ।
मन्यामहे तन्निखिलेऽपि लोक आपेक्षिकं गौरवमर्थसिद्धम् ॥३३॥

दीपाणुरश्म्युत्थकणावलोके पिपीलिका राजति शैलतुल्या ।
आकाशसौक्ष्म्ये विनिभालिते तु संप्राप्स्यतीयं सुरशैलशोभाम् ॥३४॥

केषां क्रमीणां पुरतो लघूनामनादरं तानधिभक्षयन्ती ।
नितान्तगुर्वीव तदीशरूपा पिपीलिका राजति शैलतुल्या ॥३५॥

अन्त्ये पयोधावतिमात्रमाना पिपीलिका राजति शैलतुल्या ।
चित्रीयते चित्रमिदं मनो मे कल्पादिकाले कियतीयमासीत् ॥३६॥

लघून्छिशून्स्वानभितर्जयन्ती पिपीलिका राजति शैलतुल्या ।
कृतान्तसख्या इव यन्न तस्याः कुदृष्टिपातान्प्रसहन्त एते ॥३७॥

स्वदेहभाजां पुर इन्द्रियाणामणोर्मनस्तोऽपि निभालिताभ्याम् ।
नितान्तगुर्वीव महत्प्रमाणा पिपीलिका राजति शैलतुल्या ॥३८॥

सुतयोर्द्वन्द्वसंरम्भे क्रुद्धयोः शस्त्रहस्तयोः ।
अपश्यज्जननी मोहाच्छतचन्द्रं नभस्तलम् ॥३९॥

कल्पान्तेऽपि त्वसंभाव्यं चन्द्राधिक्यं श्रुतं नहि ।
विरहिण्या परं दृष्टं शतचन्द्रं नभस्तलम् ॥४०॥

तदा त्वन्मुखचिन्ताभिस्तन्मयीकृतचेतसा ।
अपश्यं बिधुरो बाले शतचन्द्रं नभस्तलम् ॥४१॥

गौरी शम्भोः शरीरे कुसुमशरधुता निर्विशङ्कं विशन्ती
रोमाञ्चैर्भावमञ्चत्यलमसमशरावेशलेशैः स्खलन्ती ।

आलिङ्ग्यापीड्य वक्राधरमधुरमधु प्रापिबन्ती बिभेति
हेतुः स्वामी ममायं प्रिय इति भविता चेतरस्मिन्फणाली ।।४२।।

श्रीलश्रीकान्तपतिना कृता ह्येते यथामति ।
समस्यापूरणश्लोकास्ततस्तुष्यतु शङ्करः ।।४३।।

पञ्चदेवस्तुतिपञ्चकम्

भेदो न प्रतिभासते व्यतिकरात्स्त्रीभावपुम्भावयो-
रर्ध चम्पकहारि हीरसुषमं यत्रार्धमीष्टे महः ।
मायापूरुषभिन्नविभ्रमदशाभेदेऽप्यभिन्नस्थितिं
वन्देऽहं पितरौ समस्तजगतां स्त्रीपुंसरूपं शिवम् ।।१।।

वामा कज्जललेखिकाऽक्षिण शवभस्माऽऽलक्ष्यते दक्षिणे
सव्या सूक्ष्मतमोन्नतस्तनपटी दक्षोपवीतायते ।
गङ्गापिङ्गजटाप्लवा न लभते सिन्दूररम्यां दशां
स्त्रीपुंसात्मकभेदभासरहितं वन्देऽर्धनारीश्वरम् ।।२।।

ओङ्कारं जगतां पितामहमुखैर्देवैः स्तुतं पार्वती-
शम्भ्वोः प्रेममयीं परां तनुमहो विघ्नेशमभ्यर्थये ।
यस्य स्वौ पितरौ विवाहसमये मङ्गल्यकामौ परं
स्मित्वा किञ्चदवाप्तविभ्रमभरावापेततुः पादयोः ।।३।।

विश्वं यः प्रबिभर्ति नैजकिरणैराकर्षवर्षैरपा-
मश्वा यद्रथवाहिनः खुररवैःश्रौतस्वरास्वानिनः ।
लोकानां सदृशः समं सरसिजैः प्रोन्मीलयन् वासरा-
रम्भे पात्वरुणो हिरण्यपुरुषः श्रीमान्दिनेशः स्वयम् ।।४।।

भेदं या द्यति भक्तभावसुलभा लक्ष्मीशगौरीशयोः
कार्ष्ण्यश्वैत्यसमार्धमर्धमुदितैकस्यामचिन्त्या तनौ ।

पीतेनांशुकपल्लवेन पिहिताऽप्यर्धेन दैगम्बरी
मूर्तिर्हारिहरी पुनातु निखिलं विश्वं मनोहारिणी ।।५।।

श्रीकान्तशर्मोक्तमिदं सुबुद्धियुग्यः पञ्चदेवस्तुतिपञ्चकं पठेत् ।
गतिं परां प्रेत्य लभेत बुद्धिमान् समाप्नुयाद्वित्तसुतादि संप्रति ।।६।।

इति श्रीपञ्चदेवस्तुतिपञ्चकम् ।

विद्वत्परिषत्प्रतुष्टिः

सत्यः शाश्वत एष यस्य निखिलो वेदः सहाङ्गैः स्वकै-
बोद्धाऽस्मत्पितरःपितामहमुखा आर्य्या यमन्वैषिषुः ।
मर्यादापुरुषोत्तमैर्नृपवरैर्योऽरक्षि मन्वादिभि-
र्विस्रब्धं परिपालितोऽवतु विभुः सोऽस्माँश्चतुष्पाद्वृषः ।।१।।

परीता विद्वद्भिर्विमलधिषणैः शास्त्रकुशलैः
सदा मीमांसार्थे श्रुतिजलसमाक्षालितधिया ।
सतो धर्मस्येयं प्रभवतु नु धर्मोऽपि भगवान्
समाम्नातः सम्यक्समवतु स विद्वत्परिषदम् ।।२।।

इमे सभ्याः स्वस्थाः प्रतिदिनमुमेशार्च्चनचणाः
सभायै रक्षित्रेऽपि च भगवतः खण्डपरशोः ।
समृद्धिं याचन्तां विदधतु धिया धर्मपरया
निदेशं शिष्टेष्टं प्रतिमहममुष्याः परिषदः ।।३।।

विधर्मोच्छेदाय प्रभवतु जनैरार्य्यकुलजै-
र्वितीर्णालम्बेयं भगवदनुकम्पैकशरणा ।
बुधाःसम्राजोऽस्यां नृपतिनिकरोऽयं द्विजगणः
समेताः प्रेमार्द्रा दधतु निजदृष्टीः परिषदि ।।४।।

जनः कोऽप्यग्रेयं प्रणमति सुविद्वत्परिषदं
धियाऽसम्पन्नोऽपि श्रवणविवरेष्वर्पयति तान् ।
वचोगुम्फान्ये सच्छ्रवणकुहरेष्वम्बुजसम-
श्रियःश्रीकान्तेनोत्तरलमरुतोद्धृत्य निहिताः ॥५॥

शिवशङ्करपतितनयः श्रीकान्तपतिः स्तुतिं व्यधादेताम् ।
विद्वत्परिषद्विषयामधिकाश्यनया शिवस्तुष्यात् ॥६॥

प्रकीर्णमुक्तकम्

विद्याफलेच्छो स्वमतिं नियच्छ न यच्छ भावं विषयाञ्जनाय ।
मनस्यभीके यदि कामचारः सञ्चारशाली न विचारसारः ॥१॥

श्रीराजराजेश्वराभिनन्दनम्

स्वस्ति स्ताद्भुवनप्रभोर्विजयिनः श्रीजार्जपृथ्वीपतेः
प्राज्यं राज्यमिदंश्रियं च भजतां वज्रायुधावासवत् ।
कीर्तिः साधुजयावहा रणजुषां त्वद्वीरकाणां भवेत्
साफल्यं जनुषः शतं वत समा भूयाच्च ते जीवितम् ॥२॥

श्रीमञ्जार्ज सुनीतिकल्पलतिकाऽऽलम्ब्योऽसि कल्पद्रुमो
येनेयं नवनन्दनावनिरमुं प्रोत्कर्षमुत्पुष्यति ।
भक्तानाममितं सदाफलसि यन्नाश्चर्यमेतद्यतो
दिल्लीशस्य विकल्पकल्पकतुलापूरी स विश्वेश्वरः ॥२॥

श्रीमञ्जार्ज नयार्जितं तव यशः शक्रस्य वाचस्पते-
राश्रित्यापि मतिं न हर्तुमभवच्छक्यं कुतस्तद्द्विषाम् ।
सन्तापस्तु हृदि ह्यरातिनिकरस्यायं पुनर्वर्तते
सौधाः स्वेऽपि कथं शशाङ्कमधुरैर्लिप्ताइवैतैः परैः ॥३॥

सद्वृत्तौ ननु ते भुजौ गजकराकारौ गती जानुनी
नाभ्यामेव समुद्वहन्नवसि किं सर्वं महीमण्डलम् ।

व्योम्नि त्वं प्रभवस्यहो प्रवितते यस्त्वं विमानैर्वृतः
पातालेऽमरिकाह्वयेऽपि विभुता ते त्वं त्रिलोकीशिता ।।४।।

वामाङ्गे तव कामिनी वसति यैः कैश्चित्स्मृतस्तत्क्षणं
क्लेशान्मोचयसे त्वमेव जगति व्याप्नोषि सर्वानपि ।
ईशस्त्वं चतुरास्यसौम्यगुरवस्त्वां सर्वदोपासते
संसद्राजविभूषिता तव कवेर्दिव्यावदानं वपुः ।।५।।

श्रीश्रीमन्विजयस्व जार्ज जगति प्राज्याधिराज्योर्जितो
जम्भारिप्रभराजराज सदृशीं बिभ्रच्छ्रियं पूजिताम् ।
जाने जन्म तवैव जातमधुना कीर्तिं जरावर्जितां
जन्तून्विस्मृतजागरान्प्रकुरुते या जारचौरद्रवात् ।।६।।

अस्मिञ्छ्रीविजयोत्सवे तव यशः सङ्गीयमानं मुदा
चन्द्रेणोपमया न तस्य कुशला दाराः सहन्ते यथा ।
एकीभूय समाः समं परिवृतं मध्ये विधाय स्वयं
रक्षन्तीव रुचा शशाङ्ककिरणांस्ता वर्धयन्त्यः खलु ।।७।।

राजंस्त्वद्यशसावनी सुरवनीवोल्लासिता दृश्यते
गङ्गासागरमेत्य शंसति रवेः पुत्रीन्तु मुक्तोपमाम् ।
क्षारोऽयंमकरालयोऽभिनयति क्षीरोदधे रूपकं
शङ्के शङ्कितचेतसोऽपि शशिनो राहोदंरोपद्रुतः ।।८।।

कीर्तिस्ते सदनं पुरा मधुरिपो राजन्नगात्सुन्दरी
तस्याश्चारुदृगेकदेशसुरुचा सर्वं तदीयं जगत् ।
श्वेतं जातमतो नु मूढनिकरैर्गोलोकलोकेऽखिले
युक्तं किन्न यथा कथा च वत भो भ्रान्तिः सितिम्नः कृता ।।९।।

राजँस्ते विलसत्प्रताप इह काँल्लोकान्स्पृशेन्नोर्जितः
स्त्रीबालं मुनिवृन्दमार्यचरणान्भीताँस्तथा सेवकान् ।

२

यत्तु ज्ञाननिधिं रविं न दहति ख्यातं त्वदीयद्विषां
श्रेण्यां दीपकवाञ्छयेव जगतामेतद्विचित्रं सताम् ॥१०॥

चित्रस्ते जगति प्रतापतपनो यस्योष्मणा शैशिरं
कालं मन्दरकन्दरासु वनिताः प्रत्यर्थिनामूषिरे।
पादान्रश्मिमतोऽपिभूप न भयस्तब्धाहिताः सेवितुं
वाञ्छन्ति प्रमदाः पतीन्प्रियतयाऽऽश्लिष्यावनौ शेरते ॥११॥

नो दृष्टः श्रुत एव वाऽवनिपते वह्निर्वंशे मानुषे
तापः शाम्यति तापतः खलु कथं चिन्ताऽपि नोदेत्यहो।
आद्यं तत्र कुले तव श्रुतमये पूर्वैः परं दृश्यते
शान्ता येन तव प्रतापतपनादन्ये प्रतापावमाः ॥१२॥

राजँस्त्वं गिरिजापतेः सुकृपया वर्धस्व जार्ज प्रभो
त्वां नित्यं स्नपयन्तु सुन्दरतमा लक्ष्म्याः कटाक्षच्छटाः।
धन्या वाचि सरस्वती वसतु ते नीतिः स्फुरेच्चामला
कीर्तिश्चन्द्रमरीचिचर्चिततनुश्चार्वी चिरं चञ्चतात् ॥१३॥

श्रीमेर्य्या सह मित्रमन्त्रिनिकरं स्वां बन्धुतां नन्दय-
न्नानन्दामृतवर्षिणीं स्वसुतवक्त्रेन्दुप्रभाञ्चिन्वता।
एते नीतिलताफलानि वयमप्यास्वादयन्त्यः प्रजाः
श्रीश्रीमन्नविताः समाः शतमपि स्याम त्वयाऽऽयुष्मता ॥१४॥

सोल्लासस्य नरेन्द्रचन्द्रविषये यस्य क्षणा यान्त्यमी
येनासौ कवितालता सुरभभिः पुष्पैः पुनर्भूषिता।
श्रीजार्जेश्वरसंस्तवार्थमुदितप्रज्ञस्य तस्याप्यहो
श्रीश्रीकान्तपतेरिदं विजयतां शार्दूलविक्रीडितम् ॥१५॥

कविताजगत्प्रकाशो बालादित्योपमः कविर्नूत्नः।
श्रीकान्तस्तेन कृता श्रीसम्राजोऽभिनन्दने श्लोकाः ॥१६॥

प्रकीर्णम्

मुग्धे केयमपूर्वा ते गतिः कामशरार्चिता ।
शृङ्गारो विप्रलम्भेन करुणां यदवाप्यते ॥१॥

प्रकीर्णसुभाषितानि

प्रेयान्सखाऽऽगमतिथिं व्यवधाय लब्धा
भ्रष्टप्रतिज्ञ इति यैरुपहस्यते नो ।
जानन्ति ते प्रियसखोन्निजहार्दबन्धान्
ख्यातुङ्कथं गुणवतः पुरुषा न जाने ॥१॥

नृणां प्रहाणिर्भवति द्विधेह मानव्यपायादपि मानहेतोः ।
स्वशक्तिसीम्नामुपलब्ध्यभावे तस्मिन्प्रबोधोऽपि तु बुद्धिसाध्यः ॥२॥

विवेकाऽऽलोकेन प्रकृतिवृतसौन्दर्य्यमहिमा
भवेद्द्रष्टुं शक्यः कलितदृढभक्त्यार्द्रवपुषा ।
परं हन्ति प्रेमा गुरुमपि विवेकं स च पुन-
र्निहन्ति प्रेमाणं त्वयि हृदय का दुर्व्यवहृतिः ॥३॥

शृणोति देश्यान्सुहृदो जनेभ्यो दिदृक्षति स्निह्यति तुल्यकुल्ये ।
सूक्ष्मामवाप्यापि कुतः प्रवृत्तिं प्रेम्णा विमुह्यन् विवृणोतिमित्रम् ॥४॥

सद्वृत्त उन्नतः श्लक्ष्णो वधूवक्षोजसुन्दरः
केषाञ्जनानामानन्दं हृद्याधत्ते न बान्धवः ॥५॥

अत्युन्नतेन निभृतं हृदयस्थितेन
स्निग्धेन गौरववता सरसोदयेन ।
सद्वृत्तशोभनतमेन सतां प्रियेण
मित्रेण जोवनफलं स्तनयोर्द्वयेन ॥६॥

त्वं शृङ्गारमयी न तेऽस्ति करुणा चेद्विप्रलब्धेऽपि मे
किं लावण्यरसैकमात्रवसतिः सिक्तं त्वकार्षीर्मनः ।
मानिन्या नियतं त्वयाऽनवहितो नार्हामि किं माननां
मुग्धे पूर्णविधुप्रसन्नवदने मह्यं प्रसीदाधुना ॥७॥

दीयेतां श्रवणे कुतोऽपि यदि चेत्सङ्कल्पितेऽप्यक्षिणी
नो द्रष्टुं प्रतिमां न वा विलिखितुं कश्चित्तु ते वाञ्छतः ।
नासा श्वाससुखाय हृष्यतु हता बद्धाशया किन्त्वयं
हृत्कम्पः प्रतिवार्यतां कथमये सुभ्रु भ्रमच्चेतसः ॥८॥

महान्न तत्रास्ति न विद्यते लघुः
परात्मनि स्रष्टरि सर्ववस्तुनः ।
तथा स यत्रैति भवन्ति तत्रहि
समेत्य वस्तूनि स चैति सर्वतः ॥९॥

यत्सत्ताऽऽस्तिकताप्रवाहमविनिर्भिन्नं दधात्योजसा-
ऽन्तर्यामिण्यधिमानसं बुधवरानाख्याति कर्माऽऽयतिम् ।
ब्रह्माण्डस्थितिमूलकारणगतिं विज्ञानमानन्दनं
दिक्कालप्रकृतीर्नियम्य गणितं ध्यायानि तज्ज्यौतिषम् ॥१०॥

विदितविदिता यद्यप्यद्धाऽमुकेन भवस्य ये
तदपि जटिलान्नायं खेदात्पुनर्व्यथते हृदा ।
अकुशलतया स्फारे नेत्रे दधन्नसुखीव भोः
सुमुखि विजयः प्रेम्णो बाले कथं जडचेतसि ॥११॥

अद्वैतबुद्ध्यावधृतात्मशुद्धावात्मैक्यसिद्धिं व्यदधान्महर्द्धिम्
यः सानुकम्पो मयि सद्गुणैः स्वैः शिवप्रसादः स मुदे बुधानाम् ॥१२॥

प्रकीर्णानि मुक्तकानि

शिरोरुहैर्मौक्तिकसंयतैर्बभावलीकपालौ नवनागसंभवैः
प्रदोषकाले स्फुटचन्द्रतारकानिशेव सेच्छन्त्यरुणारुणश्रियम् ॥१३॥

आचार्यशङ्करस्तुतिः

नरीनृततु जम्बुकाः कटु रटन्तु वाक्पाटवात्
चकासतु भवाटवीं सुखमटाटचमाना निशि ।
विशङ्कमिहशङ्कराः कुमतिकांस्तुतान्विद्विषन्
जिघांसति भयङ्करो ननु कठोरकण्ठीरवः ॥१४॥

अनल्पपरिकल्पनापरकुतर्कसञ्जल्पना-
विभीतविधिसुन्दरीशयनतल्पसंकल्पिकाः ।
परात्मविटसङ्गमोल्लसदमन्दभूषाच्छटा
नरीनृतति चत्वरे यतिवरोक्तिचेटीघटाः ॥१५॥

विदूष्य मुनिलक्ष्मणं शशिनमत्रपायक्ष्मणा
क्षणं क्षपणकक्षणं क्षपितलक्षणं प्रक्षिपन् ।
कपालिकणभुक्पतञ्जलिजलानि पीत्वा रसा-
मथाऽवतरति क्षपाक्षयकृदर्कवच्छङ्करः ॥१६॥

सुभाषितानि

बृहन्नितम्बा करमेयमध्याः स्तनोद्धतोद्वृत्ततराग्र्यहाराः ।
केशान्धकारात्स्फुटवक्त्रचन्द्रा नेमा मनः कस्य हरन्ति वामाः ॥१७॥

समर्प्य चक्षुः क्षिपती तु पश्चादुन्नम्य वक्त्रं च विनामयन्तो ।
प्रसह्य सासौ हृदयं हरन्ती वामा मनस्तो मम नापयाति ॥१८॥

गङ्गास्तवः

पुरा निपीतां स्तनयोस्तनौ वा गजाननेनाथ कपर्दकेन ।
मुक्ताम्बरां साधु शिवाङ्गसङ्गात्तन्वाऽऽत्मना वा गतिगौरवेण ॥१॥

शिवां श्रुतीड्यां बत पार्वतीं तां भवे भवान्या सह भावभिन्नाम् ।
खिन्नामुमार्धेन शिवेन मूर्ध्ना कृतादरां मुक्तिसखीं प्रपद्ये ॥२॥

वेदान्तविद्येव सदाऽनवद्या हृद्याकृतिश्चान्द्रमसी सुधेव ।
सद्गीर्यथानिष्कलुषान्तरार्द्रा सरस्वतीवाद्यकवेः प्रसन्ना ॥३॥

ब्रह्मद्रवो निखिलदोषविनाशहेतु-
लोकत्रयेऽपि परमो भजमानलाभः ।
सोपानपङ्क्तिरिव नाकनिकेतनानां
गङ्गा पुनातु सकलानि ममाङ्गकानि ॥४॥

मातेव याऽबुधशिशुं स्वहिते नियुङ्क्ते
प्रत्येकमङ्गमुपगूहति भामिनीव ।
या शिक्षयेत्कलकलैः सरसैः सखीव
तां कः श्रयेन्न गणिकामिव सर्वलभ्याम् ॥५॥

प्रकीर्णमुक्तकानि

कालेन जातिरमुया स्वगिरोऽथगीर्भि
विद्या तयैव विनयः सुधियोऽपि तेन ।
तैरादृताः सदुपयुक्तगुणाः पदार्था-
स्तद्देशकालकलहे विनियुज्यतां कः ॥१॥

विख्यातनाममहसोऽरिसुहृत्प्रहीणा-
मष्टादशावयविनीमधितिष्ठतः क्ष्माम् ।
सम्मानमाश्रयमवाप्य विभोर्नृपाला-
च्छ्रीकालिदासकवयो गुरवो गुणैः स्वैः ॥२॥

प्रसन्नकाव्यान्यविषण्णचेतसो
निषेव्य पूर्वे कृतविद्यताजुषः ।
राज्ञां मताः शिक्षितवृन्दसम्मताः
प्रस्तार्य काव्यानि यशो वितेनिरे ॥३॥

तेषां वयं सुकृतसारजुषां कवीनां
तेऽपि प्रसन्नमनसः सुवचांस्यृषीणाम् ।
अभ्यस्य पाटवगुणैः कविताविशेषे
तुल्या भवेम कथमप्युपजीविनः किम् ॥४॥

स्वगुरूमापतिशर्मद्विवेदविषये

अभिष्टुतं बिबुधवरैः सरस्वती-
विलाससंपरिगतरम्यदर्शनम् ।
निदर्शनं विमलधियां सतां नृणा-
मुमापतेश्चरितमहो महीयते ॥१॥

उमापतीनामपहाय काशिका-
ङ्कैलासवासाय मतिं समीयुषाम् ।
यशो विशालं प्रवितत्य रोदसी
समश्नुवानं नितरां महीयते ॥२॥

अभेदभावोपगमेन भिन्नया-
प्यभेदमाप्यैव विभूयते धिया ।
निरुक्तिरेषाऽवितथेति पश्यतां
मते मयेदं प्रकृतं प्रणुद्यते ॥३॥

पुष्णात्यहो हृदयमेत्य हृतो गुणेन
मुष्णात्यहो हृदयमेत्य हृतोगुणेन ।
यस्मै जनः स्पृहयते नरपुङ्गवाय
कालोऽपि कर्षति तमेव निजं निकाय्यम् ॥४॥

प्रकीर्णसुभाषितमुक्तकानि

वैधुर्यात्परितप्य याति विलयं व्यामुह्यतोर्ष्यत्यलं
तत्पश्चात्स्वकृतेऽनुतप्यति चिरं नैराश्यमागच्छति ।

ध्यायन्ध्यायमनङ्गरङ्गलहरीं माद्यन्मनो मन्मथे
किंकर्तव्यविमूढमेति न गतिं काञ्चित्स्वनिर्वृत्तये ॥१॥

प्रियेण सार्धं मधु यद्रतावधौ
निपीय बध्वा विदधे कुतूहलम् ।
वितृप्ति चक्षुः स्वर रागसंयुतं
स्मरेण तच्चित्रयितुं न शक्यते ॥२॥

आरभ्यापिरतं प्रकाममधिकात्सन्तुष्यते हृष्यते
प्रेयान्वारशतं हि पादपतनैः संप्रार्थ्यते स्विद्यते ।
अक्ष्णोर्ह्यनुरज्यतेऽथ कुटिला भ्रूश्चाल्यते स्विद्यते
बध्वापीय मधु प्रभातसमयेऽप्युद्बोध्यते मन्मथः ॥३॥

उद्देश्याद्विरतोऽपि रक्तहृदयः स्वप्रेयसीं चिन्तयन्
ध्यायन्नर्मशतानिका कुवचनान्यात्मन्यवज्ञापरः ।
मित्रैः सार्धमपोढदुःखनिवहैर्गाथास्वसक्तो भवन्
आमोदानुपलेढि जिघ्रति मुहुः खिन्नः प्रवासीजनः ॥४॥

व्याहृत्य व्यसनानि वैदिकबुधम्मन्यैः पुराद्याप्यहो
मद्योद्यानविहारवारवनितासेवाः परं निन्दिताः ।
किन्त्वेते कवयो वयं जगति वा स्वर्गेऽपि मत्ताङ्गना-
रम्यापाङ्गरसावसिक्तहृदयास्तांस्तानि मन्यामहे ॥५॥

वियोगविधुरे प्रिये सहजनिर्भरं प्रेम यद्
भवेत्तदपहारि हार्दमिति नात्र कोऽप्याग्रहः ।
परन्तु दलितस्फुटद्धृदयरक्षिता तिष्ठसि
तथापि खलु खिद्यसीत्यभिसमीक्ष्य सन्दह्यते ॥६॥

प्रमाथिबलवद्दृढं गलितशान्ति दुर्निग्रहं
दधाति सकलं यदा विषयपारवश्यं मनः ।

विवेकविकलास्तदाग्रहपरा वयं बान्धवाः
कथं न विभ्रमस्तमां विषयचक्रचक्रभ्रमिम् ॥७॥

समव्यक्त्याभरणयोः प्रेमपात्रविकर्षिणोः ।
विशेषोऽस्त्यप्यमर्यादो मुक्तःहारकवित्वयोः ॥८॥

शुभ्राम्बरा प्रकृतिसौम्यतमा विशुद्धं
नक्षत्रहारममले हृदये दधाना ।
काङ्क्षत्ययये सुमुखि हीनपयोधरत्वा-
च्चन्द्रानना शरदियं तव सङ्गतानि ॥९॥

मानं लज्जा साध्वसं शाठ्यमीर्ष्या
शीलं क्षान्तिः प्रेम भावोऽथ कामः ।
साध्वीं खिन्नामन्यसक्ते बधूटी-
मान्दोल्याद्धा सन्निकर्षन्ति पत्युः ॥१०॥

सूचिभेधतमश्छन्नदिक्षु शक्रे प्रवर्षति ।
वर्षापथिककामिन्यो नवीनोत्पथदर्शनाः ॥११॥

अवधिगलितं कालं कृत्वा प्रियः पथिकोऽभवन्
मनसि विधुरे लीयन्ते ते चिरस्य मनोरथाः ।
विरहदहनो गाढा बाधा परा क्षणदुःसहा
हतबिधिहतोपायैषा किङ्करोमि निराश्रया ॥१२॥

प्रश्च्योतन्मकरन्दसद्गुणगणैकाधार रम्याशय
लब्धं शोभनगन्ध किन्न सुमनोवृन्द त्वयाऽद्धा प्रियम् ।
सौन्दर्यं रसिकालिसेवित यतो ह्यादाय लोकोत्तरं
पश्चात्त्वं वृतवाँस्ततो बत विभोः प्रेम्णैव मूर्ध्नादरम् ॥१३॥

स्निह्यत्स्वन्यजनेषु हार्दिकरसेनाप्लाव्यमानं प्रियान्
एतद्यद्धि पुरा वितीर्य्यविषयान् स्वांस्तांस्तथैवव्यधात् ।

तद्ध्येयेवेदमये ममैव हृदयं सोऽहं तथा तेऽपि ते
साङ्कीर्ण्यं मुमुचे तु तत्प्रियतमे स्वान्तं वशे ते गतम् ॥१४॥

सुभग परदेशरसिक स्मारं स्मारं तवोपकारान्सा ।
जीवति बाला तस्या हृदयं विद्धं मनोभुवोबाणैः ॥१५॥

ध्यायन्ती त्वनिशं त्वामवधिदिनं न स्मृतौ दधाना सा ।
तव सङ्गतौ निराशाक्षणमपिविरहं न सोढुमुत्सहते ॥१६॥

हृदयमृगः प्रिय तस्या मन्मथशरसन्निपातभीतस्त्वाम् ।
शरणं वेद न किं वा त्वं तस्य तु वागुरा कथं भवसि ॥१७॥

प्रियतम बालकुरङ्गी मन्मथशरसन्निपातभीता त्वाम् ।
अन्विच्छति शरणं तन्नोचितरचनं तवाद्य वाग्जालम् ॥१८॥

मुग्धे गुणलावण्यं ध्यायन्ध्यायन्न वेद यावत्त्वाम् ।
स्नेहप्रवाहपतितो धैर्येण हि सेतुना ध्रियै तावत् ॥१९॥

अनुरक्ताऽप्यधिविन्ना नूनं दीर्घेण विप्रलम्भेन ।
स्पर्धायै दुःशकमपि यतते किं चिरयति प्रिया तरुणी ॥२०॥

विगर्हयन्ती न न मेघवृन्दं विद्युल्लतानृत्यमवेक्ष्य भीता ।
सीता भविष्यत्यधुना प्रमीता हा हा कथं जीवसि राम मैवम् ॥२१॥

रसं मे यच्छ वा न त्वमलिनावियुते लते ।
उदीरयन्तं रागाब्धिं पिनाकं चण्डि संस्मर ॥२२॥

शाखे वियुक्ते लियुता लता किमाहूयते पल्लवरागशोभे ।
चापल्यमाविष्कुरुते हरिर्यन्नो हेतुरन्यत्र फलाभिलाषात् ॥२३॥

तरुणकिरणतीर्णवारिपूरो
द्युमणिरनुक्षणजीर्यदन्धकारः ।

उषसि सरसिजान्विकाशयिष्यत्यहह
पुनः प्रविलाय्य कोकशोकम् ।।२४।।

मा मित्र रागात्तव चित्तवृत्ति-
माकृष्य मेऽयं प्रमदः प्रसङ्क्षीत् ।
घनाघनः क्षोभणतामुपैष्यन्
प्रेमा नरान्तःकरणे न माति ।।२५।।

सखेऽनुगम्य बुद्धयात्वं स्वोद्देश्यं जीवनप्लवम् ।
ध्यायस्वेशपदाम्भोजं नान्यथैतत्प्रसेत्स्यति ।।२६।।

मधुरवचनं श्रुत्वा ये वै निवृत्य शरीरकं
लघु विधिहताः प्राणाः सञ्जीवयन्ति सुखाय वः ।
प्रियपथिक ते ध्येयाः स्वातिथ्यकाय पथि त्वया
कुशलदयितावाग्भिः पान्थो व्यथामिति बोधितः ।।२७।।

वनितावियोगकाले कविताद्रुताऽपयाति ।
विद्याऽप्यवद्यभीता शान्ति ददाति नैव ।।२८।।

पाणिनियोगे हरिहरमुख्यैर्विबुधैः प्रदर्शिते सुपथे ।
पातञ्जलजलपानान्न कश्चिदपि नाचमत्कुर्यात् ।।२९।।

समस्यापूर्तयः

अमन्दचन्द्रचन्द्रिकाविकीर्णकेतकोत्करे
मिलन्मिलिन्दमालतीमरन्दगन्धबन्धुरे ।
व्रजाङ्गना गमङ्गमं न विस्मरन्नवेन्दिरां
कलिन्दनन्दिनीतटे ननन्द नन्दनन्दनः ।।१।।

शशाङ्कविम्बनिर्गलत्सुधासबन्धुरश्मिभि-
र्वधूमुखेन्दुसंवलत्प्रभैश्चलत्पटाञ्चलैः ।

सुगन्धिमन्दवायुभिर्निषेवितो दिवानिशं
कलिन्दनन्दिनीतटे ननन्द नन्दनन्दनः ।।२।।

मागा मागारतस्त्यक्त्वा वाच्यां वाच्यां प्रभोऽटवीम् ।
प्रैषं प्रैषं दृशौ ब्रूते रामा रामाननाम्बुजे ।।३।।

वनेऽवनेडचतेऽनेना योध्या यो ध्यायतीति सा ।
नायं नायं दृशावीष्टे रामा रामाननाम्बुजे ।।४।।

सदने सदने ना यो नाचरेन्नाचरेत्क्रियाः ।
नभवो न भवो ह्यस्य परमो परमो यदि ।।५।।

गगने गगनेष्टे त्वं सुक्रमेऽसुक्रमेऽपि यत् ।
विरमाविरमात्तस्मात्परमो परमो यदि ।।६।।

काचित्कान्तमपेतभीर्निशि बधूरुद्दिश्य यान्ती रसा-
न्मन्दं मन्दममन्दचन्द्रवदना निस्तन्द्रपाथोजदृक् ।
तीर्त्वा सन्तमसं नवेन्दुकिरणालोकात्पुरो बिभ्यती
स्निग्धं नीलनिचोलकं तरुतलेच्छायाच्छलादुज्झति ।।७।।

अयि कितव तवैषा वेद्म्यहं हृच्छेयेद्धं
न वहसि परिरम्भारम्भमेनं सदम्भम् ।
ननु रिपुगणघातिन् कृष्ण किं रुक्मिणी ते
स्पृहयति न वराकी कुन्तलाभान्विताय ।।८।।

दान्तामनङ्गरसकेलिसुखप्रदान्तां
तान्तामुमामिव यशोमयगौरितान्ताम् ।
शान्तामहो न कलया तुलयेऽवशान्तां
कान्तावकीनगुणगौरवलुब्धकान्ताम् ।।९।।

कर्णेजपालवालाढ्या श्लाघ्यप्रियवदावदा ।
सिच्यते दुर्भगैरीशैर्द्रविणैः खलतालता ।।१०।।

सौन्दर्यं चिन्वता सुभ्रूर्लज्जया संवृता वृता ।
भ्रमरेण न नास्वाद्या पुष्पेषूच्चलता लता ।।११।।

प्रकीर्णमुक्तकानि

घोरे वने भवति गर्भभरालसाङ्गीं
लोकापवादभयतोऽनपराधगर्भाम् ।
त्वां सन्त्यजन्नकरुणोऽप्यबलां विचेता
जानीहि जानकि न जीवति रामचन्द्रः ।।१।।

इयं च पुंस्त्वं परिवीक्षमाणा
समासतस्तद्धितकाम्यया किम् ।
शब्दायमाना रशना पपात
समर्थिते पाणिनियोग एव ।।२।।

प्राणप्रिये न नितरां हृदयं मदीयं
नूनं दहेत्तव कृते विधुरो वियोगः ।
चेन्नापतेयुरलिकार्ण्यमुषोऽन्तराले
वामा नितान्ततरलाः कुलटाकटाक्षाः ।।३।।

प्रबुद्धकमलोपमे किमिति चक्षुषी मानिनि
क्षिपस्यमलकोणसद्द्युतिविनिर्जितेन्दुप्रभे ।
इहास्ति हृदयं न किञ्चिदपि कस्यचित्तूज्ज्वलं
पुरैव ननु रञ्जितं तव तदेकदेशच्छवि ।।४।।

अयि मन्मथमन्मथो भवान् न परं किङ्करता तवेष्यते ।
नयतोऽत्र जनोऽवशोऽपि सन् पदघाताय परं निषेवते ।।५।।

अङ्काद्भर्तुः स्तनितसुभगस्योत्थितस्याम्बुदस्य
क्रीडालोला प्रखरबलना संस्खलित्वा स्खलित्वा ।

वेशं वेशं दिशति चपला कामिनीभ्योऽपदेशा-
न्नाट्येनार्त्तं प्रियमिह निजं चुम्बितुं सूपदेशम् ।।६।।

शान्तिः कान्तिमपास्य राजति धृतिर्देहं क्षिणोत्यातुरं
चिन्ता प्रावृणुते समस्तविषयान्स्वानिन्द्रियेभ्यस्त्विमान् ।
विस्मर्तुं न च शक्तिरस्ति शरणं निद्रापि दित्सेन्न मे
नाथ त्वय्यधुनागतेऽस्रुभिरयं मोहो हितायैष्यति ।।७।।

नीलालकालिपरिचयचतुरा सुरभिर्बधूवदनमाला ।
प्रातःप्रफुल्लशोभा राजति राजीवराजीव ।।८।।

सरसा रक्तोत्फुल्ला कौमुद्याक्लेशिता कयापि निशि ।
चक्षुर्द्वयी प्रिये तव राजति राजीवराजीव ।।९।।

गतीरनेकाः परिबिभ्रतोऽपि
प्राप्यैव सिद्धिं मनसः प्रगत्या ।
विवेचने जैनपदं लभन्ते
जीवाणवो निर्ज्जितपारमैष्ठ्यम् ।।१०।।

कविसहृदययोः साम्ये सहृदयमिव सहृदयं कविश्लाघे ।
यो नायक इव काव्ये परकीये वहति गौणमनुरागम् ।।११।।

मित्रसुतोत्सवाभिनन्दनम्

श्रियममलिनां कीर्तिं विद्यां गुणान्समवाप्य भोः
सहृदय सखे भूयो भूयोऽभ्युदीय सुतोत्सवात् ।
सुखय चतुरोदारान्मित्राण्यथ स्वकबान्धवाँ-
स्तदनु च परान्कुल्याँस्तुल्यान्सतः सुखदुःखयोः ।।१।।

भवति विजयं कीर्तिं लक्ष्मीं पुनर्विदधात्वयं
सुत इह शनैर्बाल्याद्वर्षीयसीं तु जुषन्दशाम् ।

क्रमिकमुदयं दर्शं दर्शं शिशोश्च तव प्रिया
सुखितहृदया प्रेम्णा मित्रं पराजयतां हि सा ।।२।।

पितृऋणमहोत्तीर्णं चीर्णं तपो विमलं त्वया
सरलहृदयैर्दारैर्लोके यशांसि च लेभिरे ।
मनसि तमसाऽऽकीर्णे तूर्णं प्रदीप इव क्षणात्
सुखमयमयं पुत्रः प्रोद्दीपयत्वतुलं महः ।।३।।

भवतु पठिती शास्त्रे कीर्तिं च ते लभतां पुनः
प्रियवर सुतो दीर्घं चायुः समाः शतमाप्नुयात् ।
बिबुधमहिते धर्मे बुद्धिं दधात्वनघश्चर-
त्वखिलमुपमेयाचारोऽयं भवे सुकृतं कृती ।।४।।

त्वमिव सततस्तेनप्रेमाङ्कुरं सफलं सुतो-
प्यनुपमसुतेनाग्रे मित्र श्रुतैः स्वगुणोत्सवैः ।
भवतु सुमुखी दृष्ट्वा पौत्रं भवानपि तृप्यतु
प्रियवर पुनस्तस्मात्पश्यापरा अपि सन्ततीः ।।५।।

उत्कण्ठा

आकाङ्क्षतो या क्षणमप्यनिन्द्ये स्मृतिं ननूनं विजहासि वामे ।
सा मे कदाऽऽयास्यसि दृष्टिवर्त्म नर्मावतारेव रतिर्द्वितीया ।।१।।

मुग्धे विलासास्तव ये ह्यभूवन् जीवातवो मे परिहासलासाः ।
त एव पाशा विधुराय तस्मायुद्बध्य जीवं ददति त्वपाशाः ।।२।।

गच्छन्स्वपञ्जाग्रदहर्दिवं यां चितेव चित्ते प्रकृतिं बिभर्मि ।
विस्मर्तुमिच्छोर्न मनो जहासि मुधैव जातं व्यपदेशजातम् ।।३।।

राजा रजन्यां जुषते रजोभिर्न रश्मिभिश्चक्षुरिदं वराङ्गि ।
तीक्ष्णं पुनर्विध्यति मोहनास्त्रैः कामोऽपि वामः प्रणयापराद्धः ।।४।।

शशी शशाम क्षितिमासमुद्रं धीरः समीरो न यमी चिरस्य ।
वसन्तसामन्तमवाप्य नूनं मारः प्रमाराय वियुक्तकस्य ॥५॥

नर्माणि निर्माय मिथो निकामं प्रणीय काङ्क्षामभिनीय कामम् ।
यत्प्रैरयो मेऽक्षिसुपक्ष्म वामं न तन्मनो मे विजहातु कामम् ॥६॥

मुखं कदा पद्मपलाशनेत्रे सुस्निग्धलावण्यरसानुपानम् ।
तत्कीरदष्टेऽधरपक्वबिम्बे पास्यामि सन्दश्य सदृक्पुटेन ॥७॥

याऽपाययो मध्वधरादनूनं प्रसूनवत्कोमलगात्रशोभे ।
सा मे कदा त्रस्तकुरङ्गनेत्रे निधित्ससि त्वं हृदये कपोलम् ॥८॥

तृषा कृशः सर्वसुखं प्रमेयं वचोऽमृतं ते परिपीय सोऽयम् ।
जीवः प्रणिध्याति न चेद्ध्रुवेयं त्वत्सम्मुखीनो मम किन्न हेयम् ॥९॥

सूक्ष्मांशुकक्षोभि कठोरवृत्तमुदग्रमुत्तोलितकञ्चुकं तत् ।
कदानु वक्षोरुहयुग्ममेष दङ्क्ष्यामि कामं मधुरोक्तिगर्भः ॥१०॥

निविश्य गाढं परिपीड्य बाढं पयोधरौ कोमलबाहुबल्लि ।
कठोरवक्त्री न कथं क्षमेतां परीक्षणो मे हृदयस्य दार्ढ्यं ॥११॥

चीनांशुकाच्छादनमच्छशोभमुद्गच्छदंशुच्छुरितं सुकाञ्चि ।
चक्रायतं तत्सुभगे कदा मे चक्षुःपथे स्यान्नु नितम्बबिम्बम् ॥१२॥

पुरःपुरो मे बिधुमुख्यमन्दं गजेन्द्ररम्याणि रणन्मणीनि ।
आविर्भविष्यन्ति कदा नु तानि गतान्यनिन्द्यानि मनोहरणि ॥१३॥

दोलासु लोलाञ्चलकर्षणानि तिर्यञ्चि किञ्चित्स्मितवीक्षणानि ।
स्तनोच्छलत्कन्दुकताडनानि किमाचरिष्यन्त्यधरस्पृहाणि ॥१४॥

करौ कुचाभ्यान्नयने कटाक्षाद्धृत्पादधातादधरान्मुखन्नु ।
लिलप्सते तन्वि परस्परस्मान्मनोगतं यत्तदितो रहस्यम् ॥१५॥

न तद्गृहं यत्र न मुग्धयौवना न यौवनं नृत्यदनङ्गभेदवत् ।
न मन्मथो यत्र न सा विलासिता न ते विलासा न मनःप्रमाथिनः ॥१६॥

यस्त्वां प्रसादयति चाटुवचोभिरर्थ्यैः
मूर्ध्ना प्रणम्य परिचुम्ब्य मुखारविन्दे ।
आरिप्सुरेव च हठान्मनसेप्सितं तं
सा विस्मरिष्यसि कथं रतिपण्डितं माम् ।।१७।।

रोमाञ्चितानि दधती परिचुम्बितेषु
या सीत्कृतान्युदतनोः सुविदंशनेऽपि ।
भूयोऽङ्गधूननपटो रतिबन्धधीरे
सा त्वं न भेत्स्यसि कटाक्षशरैर्मनः किम् ।।१८।।

शिवस्तवः

स्मरामि शम्भोः शोभाऽऽढ्यं चरणाम्भोरुहद्वयम् ।
दृष्टे यत्र निमीलन्ति पद्मान्यक्षाणि दुष्कृतम् ।।१।।

हृत्पद्मोल्लासने युक्तास्तीव्रवेगं तमश्छिदः ।
किरणाः शिवपादीया सन्तु मह्यं निरामयाः ।।२।।

खेष्वञ्चत्सु च येष्वद्धा नखमालोकपूरितम् ।
यैरिन्द्रः प्रीयते शैवा मयूखा नखरस्य ते ।।३।।

मृणालतन्तवो येभ्यो नासूयन्ति विशेषतः ।
मायापटविधानज्ञास्ते नखोस्राः शिवाय वः ।।४।।

निलीय येषु चन्द्रोऽपि नात्मानं स्मरति क्वचित् ।
प्रतिबिम्बान्वृथा पश्यन्स्ते तमो धुनुयुर्नखाः ।।५।।

सुरासुरर्षिपरिषद्विकीर्णसुमनोलिहौ
नाट्यसङ्गीतशास्त्रज्ञौ नुपुरौ भूतये विभोः ।।६।।

मायावामनकाण्डज्ञं ययोर्ब्रह्माण्डमण्डलम् ।
निक्षिप्तोत्क्षिप्तयोर्व्यक्तमङ्घ्रिदण्डौ शिवाय तौ ।।७।।

शुण्डादण्डनिभावूरू गिरिजाकरजाङ्कितौ ।
व्याघ्रचर्मपरीधानौ श्रियमानयतां स्मृतौ ॥८॥

दिग्वाससः परालक्ष्मीः फणीशरशनोज्ज्वला ।
गौरीवाधिकृता स्वाङ्के व्याघ्रकृत्तिः श्रियेऽस्तुवः ॥९॥

वद्धचन्द्ररुचिस्पर्धा यस्य कान्तिजुषोंऽशवः ।
शब्दार्थरशनीभूतः स नागः श्रियमाहरेत् ॥१०॥

तत्सौन्दर्य्यतरङ्गाढ्यं क्षीरोदस्येव संहतम् ।
रोमालिशेवलं नाभिभ्रमि तुन्दं मुदे कृशम् ॥११॥

गिरिजाकुचकाश्मीरप्रलिप्तभसितं सितम् ।
व्यूढं लक्ष्म्योपगूढं तद्वक्षः क्षिप्याद्विमुग्धताम् ॥१२॥

निलिल्युर्यत्र गाण्डीवक्षिप्ता बाणाः किरीटिनः ।
रक्षःक्षोभावहं वक्षस्तदेनः क्षोदितुं क्षमम् ॥१३॥

प्रलम्बनिस्तलौ बाहू क्रमपीवरतां श्रितौ ।
भुजङ्गयमदण्डाभौ शूलमुद्धरतां हृदः ॥१४॥

पूर्णचन्द्राभवदनामपर्णां स्वर्णसन्निभाम् ।
सुकुमारीं सुजाताङ्गीं विम्बौष्ठीं तनुमध्यमाम् ॥१५॥

स्तनद्वयभराक्रान्तां नितम्बालसगामिनीम् ।
लसन्तीं क्रोडगां पत्युर्निनीषामि मतिं हठात् ॥१६॥

तदङ्कगावुभौ वन्दे कार्तिकेयगजाननौ ।
विहरन्तौ हरन्तौ ।तौ निलीयाश्चलकोरके ॥१७॥

सिंहसंहननस्यास्य परिणाहि समुन्नतम् ।
कन्धरं शर्मणे भूयाद्वृषस्य वृषलक्ष्मणः ॥१८॥

कण्ठो वः शितिकण्ठस्य पात्वञ्जनचयोपमः ।
यत्र काश्मीरलेखेव गौरीभुजलता भवेत् ॥१९॥

भूत्वोपवीतो दत्तेऽङ्के वामे स्तनपटीयति ।
विचित्रचरितो यस्तं सुस्मूर्षामि फणीश्वरम् ॥२०॥

हारे हारोर्ऽपितः कण्ठे भुजङ्गो भव्यमन्वियात् ।
येनोमाबाहुबन्धानां सुखस्पर्शोऽप्यवाप्यते ॥२१॥

प्रचण्डघोणं दीर्घाक्षं ललाटायतमण्डलम् ।
विना श्मश्रु शशाङ्काभं वक्त्रं धयत धीधनाः ॥२२॥

शशिभानुकृशानूनां गुणा येषु वसन्ति ते ।
अक्षीणि त्रीणि तान्यञ्जो निध्यातानि सुखाय वः ॥२३॥

विशालं फुल्लपद्माभं सुपक्ष्मसुमनोहरम् ।
त्र्यक्षस्याक्षित्रयं सर्वं समक्षं क्षेममाकृषेत् ॥२४॥

कुण्डली कुण्डलीभूयं ययोः श्रुत्योर्विराजते ।
रसनाचापलायत्तः शशी शुक्तिं पिबन्निव ॥२५॥

शृणुतां ते श्रुती प्रेम्णा मयैवोदश्चितां गिरम् ।
नीरसां मधुरां वापि सतां नात्र हठग्रहः ॥२६॥

पातु चन्द्रकला युष्मान्निरीक्ष्य प्रतिबिम्बिताम् ।
यां गौरीमौलिपाल्यङ्कां स्मरद्वेषं जहाति सः ॥२७॥

पिशङ्ग्यो भाश्छटा यासां सटानां स्वर्णवर्च्चसाम् ।
दिगन्तानश्नुवत्योऽपि सतां स्वान्तं विचिन्वते ॥२८॥

नभःप्राङ्गणमाक्षिप्य ब्रह्माण्डास्फोटहेतवः ।
नृत्तावसाने ता धूता दारयेयुस्तमो नृणाम् ॥२९॥

जटाजूटं नुतं वन्दे सटा यस्य समुत्थिताः ।
क्षीराब्धिक्षालितं मेरुं विवरिष्यन्ति निन्दितम् ॥३०॥

मेरोः क्षीराब्धिना सङ्गं सहिष्यन्ते न साधवः ।
किन्तु गङ्गोच्छलन्त्याहोद्धुष्य तेभ्यो निदर्शनाम् ॥३१॥

भवाराधना

ननु हतहृदयस्य क्रान्तिभूमेः स्वतन्त्रै-
र्विषयगणगुणैराकृष्टसर्वेन्द्रियस्य ।
अनुभवरहितस्यादेशहीनस्य पुंसः
कथमिव मम भक्तेः पात्रतां यासि शम्भो ॥१॥

मयि न सदुपदेशा नापि विद्या न भक्तिः
श्वसिमि न परतन्त्रः श्रद्धयाऽऽराधितोऽपि ।
कलुषितहतचेताः स्तौमि विश्वासहीनं
कथमिव मम भक्तेः पात्रतामीश यायाः ॥२॥

अजनि बत मयैवं नो परस्योपकारै-
रहमिव जगति स्यात्स्नेहहीनः पुमान्कः ।
दधति तु मयि मिथ्यास्निग्धताभ्रान्तिमेके
न खलु न परिहीणो वञ्चकोऽहं भवामि ॥३॥

विगलितमतिरेको नाथ हीनोऽसहायः
स्वहृदयमनुरुध्यन्ज्ञाततत्त्वाभिमानी ।
गतगुरुपितृभक्तिर्नास्ति कोऽश्रद्दधानः
कथमिव न विनङ्क्षयम्यङ्ग दर्पेण सोऽहम् ॥४॥

पितृगुरुबुधवृद्धेष्वस्तभक्तिः समाने-
ष्वनवगतमतिः स्त्रीबालसङ्घेऽनुदारः ।
प्रणिपतनपराणां निर्घृणो घोरचित्तः
कथमिव विनिपातं मादृशो नेश यायात् ॥५॥

अनुभवविरसोऽहं कस्य कुत्रापि किञ्चित्
कलुषितहृदयत्वादीश नेक्षे शृणोमि ।
न खलु परसुखेनाप्युत्प्रफुल्लो भवामि
प्रणयसमनुकूले नाक्षिणी फुल्लयामि ॥६॥

न परपरशुचासंतष्टचित्तः कदाचित्
विषमसमययोग्यं वर्तये कोष्णमश्रु ।
हृदि नहि मम रागः पार्श्ववर्तिष्वपाङ्गे-
ष्विति भव भव मह्यं सूद्यतो दत्तदृष्टिः ॥७॥

यदि मयि भव भावास्ते न मानुष्यकस्य
यदि तु भवति भूतिः सा कुलाङ्गारकस्य ।
यदि च मयि सुबुद्धिर्नास्तिकस्यैव गुर्वी
नहि नहि खलु सूते मादृशं पुत्रमुर्वी ॥८॥

अयि न दहति चित्तं मे कथं शोकवह्निः
कथमिव कुरुते नो सागसं मां स रागः ।
शिथिलतनुरुपेक्षाधीणधीरुक्षतुल्यः
कथमिव न समक्षं सत्प्रभोः पक्षपाती ॥९॥

अयि भव भव भूयो भावहीनेऽनुकूलो
विरहितशतशूलो मन्दधीत्वं जहातु ।
भवतु निरवकाशे चित्तदेशेऽर्पितस्य
प्रणवपुरुविकाशा मूर्तिरीशान तस्य ॥१०॥

मम न विरसपुंसो देव वाणी पुपोष
न मयि कुलविहीनेप्याशुतोषस्तुतोष ।
न मयि गुणविशेषो निर्गुणेशानुयाते
न सरसमतिलेशो भक्तिदूरं प्रयाते ॥११॥

विषमविषयदष्टं शान्तिहीनं पुमांसं
स्नपय करुणदृष्ट्यास्वार्द्रचित्तः स भूयात् ।
स हि नन परतन्त्रो नस्वतन्त्रो न वा त्वं
स्खलितिरननुकूला तस्य नो केवलं ते ॥१२॥

अयि सहृदय भूयात्सोऽपि साहाय्ययुक्तो
हृदयमधि च तस्य प्रस्तरत्वं न भातु ।
लसतु जगति शुद्धानाप्य ते दृङ्निपातान्
न परपरविमुक्तिं प्रार्थयत्येष बालः ॥१३॥

करुणमतिरुपेयाः कृत्यदृष्टिं स्वकार्ये
करुणमिह लपामो व न शम्भो विचिन्त्य ।
नहि यदि मयि रागस्ते विरागो न दूष्यः
प्रणयविहतिशून्ये कोऽभिमन्येत दोषम् ॥१४॥

यदपि मयि विविक्तं भक्तिहीनोऽधमोऽहं
परमिह नहि याचे योग्यतायाः परस्तात् ।
भवति न भवितैतद्वस्तु दुष्प्रापमद्धा
वदति न मम चित्तं मानवित्तं कदा तु ॥१५॥

न खलु परिचितो न नाथ तेऽहं
तव सुमनांसि पथो न दर्शयन्ति ।
ध्वनिरनवहितावधानधायी
परिपरिकर्णमिहैत्य नो विलीनः ॥१६॥

तव कुटिलमते मया सहैवं
खलु समुदाचरतो न किञ्चिनौजः ।
द्रढय मयि मतिं त्रिवर्गसूते
स्वयमयवर्गं किमूहसेऽविषादम् ॥१७॥

न पुरि तव पुरा स मूर्तिसङ्गो
ह्युतिमुपयास्यति मादृशात्प्रमादात् ।
अपि शिरसि विलक्षणोऽङ्गुलीना-
मवनतिवारणहेतवेऽवलम्बः ॥१८॥

प्रखरविषयवासनाभुजङ्गी
हतविषलिप्तकरालितस्य चित्ते ।
प्रतिकृतिरपि ते पदं निधातुं
न खलु समुत्सहतांतरां ममेयम् ॥१९॥

पितरिह न फलन्ति सूपदेशा
न हि सरणिर्न मतिर्न वा विवेकः ।
अलमलमिव मादृशे विनेये
भुवनविभोः शिशुरक्षणाय यत्नः ॥२०॥

प्रकृतिहृतमतिः प्रमादभूत-
ग्रहपरिलुप्तगतिर्जनः कुबुद्धिः ।
कथमिव लभतांतरां प्रमोदं
जनुषि विशिष्य विशिष्य भेदमानी ॥२१॥

हर हृदयहर प्रमुष्टचित्तान्
कटुविषयान्हरते यदि प्रभुत्वम् ।
परमिह जनितेषु तेषु नाशा-
न्मम ममताभिमतिप्रणाश इष्टः ॥२२॥

भव भवति किमु श्रितैषु सुश्री-
र्भयमुपयाति कुतो मनोऽनुरज्यत् ।
परिचिनु परिचित्य मह्यमेनां
विवृणु कथन्न्विव तत्र ते विवेकः ॥२३॥

अपि विषयगणान्प्रजाय माया-
जवनिकयाऽन्तरितं जगद्विधाय ।
क इव न जगति प्रभोः प्रयत्नः
परपुरुषेषु निखाय वेन्द्रियाणि ॥२४॥

त्वयि न मतिरये न भक्तियोगौ
मम कृपणस्य कथञ्चनाप्यभूताम् ।
ननु मम शिव हेतवो ह्यघानि
प्रकृतिरदृष्टकृता मया न वार्या ।।२५।।

न मयि गुरुरतिर्न साधुसेवा
न च सुहृदो न च दैवतं परं च ।
अलसमतिरलब्धविद्य एव
प्रविदितमेमि समस्तवस्तु जातम् ।।२६।।

मयि भव भव बालिशे सयत्नो
ऽस्थिरमतिरस्मि रजस्तमःप्रधानः ।
अहमनु न भवन्तमुद्युयुक्षु-
स्तव करुणातरुणायितेऽसमर्थः ।।२७।।

जगति भवति भक्तियुक्त एको-
ऽपर इह नोग्रमतिस्तथा ह्यनीशः ।
भजति रहति कोऽपि दुःखबन्धौ
न विषमनिर्घृण ते प्रभोरपेते ।।२८।।

भवति भवति किन्न विश्वनाथे
ह्यननुगुणेऽपि जनेऽपि बन्धमोक्षः ।
यम विनियमसे न जन्तुजातं
त्वयि करुणा किमु नीतिपक्षपातौ ।।२९।।

इति बहु बहुधाऽपि चिन्त्यमानं
त्यजति मतिर्न भवन्तमेकमाप्य ।
रहितशमदमः प्रणिध्यपेतः
किमु करवाणि मनस्युपाययोगम् ।।३०।।

श्रुतिविकलतयाक्षियोगहीनाः
प्रमितिपरा अपि तत्पराः कुमार्गे ।
अपटुभिरपतार्क्किकैकबोधै-
स्तव गतिमेव वयं न नाथ विद्मः ।।३१।।

इति सदनुचितैरनर्थयोगै-
रहमपहृत्य मतिं प्रयामि तेऽद्य ।
न च खलु स पुनर्लभे स्वबुद्ध्या
मयि परिपाल्य दयां कदैष्यसि त्वम् ।।३२।।

वद विषयकृतेऽपि विप्रलम्भं
जन इह यातु कथं विमुह्य बुद्ध्या ।
किमु न सुरसुतेयमिन्द्रसेव्या
किमु भवतो रुचिरा न काशिकेयम् ।।३३।।

राजन्विजयते कोऽपि मनस्कारैन्द्रजालिकः ।
येन व्यातन्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।।३४।।

यो ह्यैन्द्रजालिकतया दहरं प्रविश्य
सर्वं दधाति कुरुते प्रविलापयत्तत् ।
तस्मै नमोऽस्त्वणुतयाऽपि विभज्य सर्वं
सर्वात्मना स्थितिमते पुरुषोत्तमाय ।।३५।।

स्वप्नानिपरिदृश्यन्तेऽत्यद्भुतानि मनोमुदे ।
मूढास्तेष्वनुरज्यन्ति .स्वप्नसन्दर्शनं जगत् ।।३६।।

भुवि तन्महदैश्वर्यं नास्ति दृक्पथगामिनः ।
मोहयेल्लोलयेदब्जो यन्मनांसि मनस्विनाम् ।।३७।।

शिवार्पणम्

अयि शङ्कर शं करोषि चेन्मयि नत्स्वं कृपया विसर्ज्जय ।
अनिमीलितपक्ष्म संक्षमं नयनं फुल्लसरोजसुन्दरम् ।।१।।

कति वा न निमीलितास्त्वयाप्युदयन्ते न कति स्पृहा मयि ।
ननु ताभिरयं सुखी भवेन्न च वेत्ति स्वहितं कदाचन ।।२।।

यदि नाम मया न सेव्यसे शिव नात्मा तव भेदभाजनम् ।
अनियन्त्रितसत्त्ववानयं क इव द्रोहमहो चरिष्यति ।।३।।

भक्तिभाजनमये भवन्नयं किं विधास्यति ततः पराङ्मुखः ।
श्रद्धया विधुरितेऽत्र किं भवान् नीतिमुन्नयति पारदर्शनाम् ।।४।।

त्वमेव मे नाथ करोष्यनुग्रहं न मेऽस्ति शक्तिर्हि तवार्जितुं खलु ।
अतोऽन्यथा चेत्कथमन्यथाभवेत् ब्रवीम किन्नात्र यथोचितं प्रभो ।।५।।

प्रकृष्टमूर्ते न ममास्ति साध्वसं त्वया ब्रुवाणस्य करोमि किन्ततः ।
क्षमैव मूर्त्तिस्तव तत्र कारणं न वारणं येन शिशोर्मतं तव ।।६।।

तवैव शुक्रेण वयं विनिर्मितास्त्वमेव चात्मा भवसीह स प्रभो ।
त्वया विना जीवनमेव नो भवेत् ततोऽर्हसि क्षेमविधानकौशलम् ।।७।।

जनोऽस्म्ययोग्यः खलु यद्यहं प्रभोरकौशलः स्वस्य परस्य वा भवे ।
सुखाय दुःखाय पराक्रमाय वा किमर्थमेषोऽस्मि विनिर्मितस्तदा ।।८।।

न बुध्यते नाथ मया तवेहितं निरीक्ष्य किं वा सुहितोऽसि मे हितम् ।
तवार्हणायां विनिवेश्यते मनः स्थिरीकृतेर्न प्रभवेदयं जनः ।।९।।

निगृह्यतामेष जनोऽथवा दृढं परिग्रहाद्यस्य कथन्नु निष्कृतिः ।
प्रमाणमस्मिँस्त्वमसीह केवलं तवैव जीवाम वयं प्रभोर्बलम् ।।१०।।

परिदेवना

अयि भारति भारतावने विषमामद्य युवां दशां गते ।
यदुभे शिवशब्दलाञ्छितः स कुमारो निजहौ शुचाऽऽकुले ।।१।।

अयि काश्यपि मातरीहिते विधिनाऽऽसीःकिमिव प्रवञ्चिता ।
यदयं हरते तवात्मजाँस्त्वयि सत्यामपि निर्दयोऽत्रपः ।।२।।

अयि धर्म विपत्स्यसे पुरा क्व नु वाऽऽस्तिक्यभुवि प्रलीयसे ।
अपि कालसुखेन वर्तसे नियते त्वन्नहता कथन्न्वभूः ।।३।।

प्रहरस्य कुतोभयोन्तक श्रुतविद्या न विशीदथ श्रुतैः ।
परिणामकृतं त्वयोचितं सुखिता त्वं भवितव्यते चिरात् ।।४।।

क्वनु दारसुताः क्व वा सखे क्वनु बन्धो विबुधा द्विजाः क्व वा ।
अवनावणु शर्म लप्स्यते क्वनु शत्रो नियते दयावति ।।५।।

हतजीव कथन्नु जीवसि प्रतिलभ्यं किमु चेतने त्वया ।
ननु वज्रमयोऽस्मि दारुणो हृदय त्वं न परिस्फुटस्यदः ।।६।।

अयि कृष्णिततारचक्षुषी न किमालोकयतं तमोऽधुना ।
विदिशोऽभिभवद्दिशः पतद्भवति व्योमवदायतं हि यत् ।।७।।

क्वनु पण्डितमण्डली हता क्व हता पण्डितराजता गता ।
बुधमूर्धमणिः क्व सोऽधुना न धुनासि प्रसभं मनो विधे ।।८।।

जननीसुतमित्रबान्धवाः स्पृहयन्ति क्व सुखाय संप्रति ।
श्रुतधर्मतपोऽन्विते मुनौ दृढनिद्रां विधिना प्रवेशिते ।।९।।

अपि विश्वमिदं तव प्रियं तदु षट्शास्त्रिषडाननाञ्चितम् ।
ननु निर्दयता प्रदर्शिता भवता विश्वपते कथन्न्विह ।।१०।।

शिव येन विना न मोदसे क्व स गौरीशिखरेऽपि लप्स्यते ।
श्रुतिशास्त्रमिता प्रिया पुरी यदि तेनाऽस्ति विभोऽद्य वञ्चिता ।।११।।

अधुना तव नाथ सा पुरी बुधरत्नेन विवर्जिता कथम् ।
ननु दुःखवहा भविष्यति प्रवहन्त्यश्रुमिषेण जाह्नवीम् ।।१२।।

जनते क्व तवाधुना प्रियः क्व पताका तव काशि पातिता ।
असि भारतवर्ष दुर्गतं क्व पिता भारति भाति सुव्रते ।।१३।।

क्व स जङ्गमपुस्तकालयः क्व नु शास्त्रं प्रतिभा स्मृतिः क्व नु ।
क्व नु वाऽखिलतन्त्रभूमिषु स्वपरैरप्रहता स्वतन्त्रता ।।१४।।

अयि काशि विलीयसेऽधुनाऽप्युदयन्तं कमिव प्रतीक्षसे ।
त्वयि मुक्तिरतोऽसि शान्तिभागथवा प्रस्तरसारिणी स्फुटम् ।।१५।।

प्रणिपत्य विधे त्वमर्थये करुणालेशलवं विधत्स्व मे ।
ननु मूर्तिरसौ मनोहरा परिमुप्तेऽपि चकास्तु मद्धृदि ।।१६।।

स्वपतः श्वसतोऽथ जाग्रतो भ्रमतोऽप्यध्वनि गच्छतोऽन्यतः ।
मनसि प्रविकाशमाप्नुयाच्छिवमूर्त्तिर्हि कुमारलञ्छिता ।।१७।।

अरुणोदयः

यासामुत्सङ्गजाता विहरति नलिनेपूत्सुकारागिणी श्री-
र्यास्तल्लौल्यं निरोद्धुं ननु जलजकुले न्यस्यतां यातवत्यः ।
सावित्र्यं याः प्रपन्ना यदि कुमुदवनायैन्दवीनां द्युतीनां
लक्ष्मीमुत्पाद्य मुग्धा ददतु रविरुचस्ता नरायाऽऽस्तिकाय ।।१।।

पूर्वायाः प्राक्षन्त्यो मलयमरुतमप्यञ्जसोदीच्यवाञ्चो
व्युष्टेयाः सौरभायास्फुटिलदलदृशामङ्ग पङ्केशयानाम् ।
नक्तं यासां निवेशोऽस्तमितगिरितटाद्दूरदूरं चकास्ति
भास्ता भानोरनुष्णा मम दधतु चिरं मौलिभूषात्वभावम् ।।२।।

लक्ष्मीमुल्लासयन्त्यो जलजकुलगतां पल्लवालोकमुग्धा-
न्त्रोलम्बाँल्लास्यलीलाविलसनमुपट्रन्मेलयन्त्यो लताभिः ।
दीप्तांशोस्ता रुचस्ते परिमलबहलान्मण्डलाल्लम्बमाना
लुम्पन्तां निर्विकल्पं कलिमलपटलं स्त्रैणसिन्दूरलेखाः ॥३॥

आताम्राः क्वाम्रवल्ल्यः क्वनु तरलतराः पल्लवालोहितान्ता
रक्तं क्वास्ते न केशव्यतिकरललितं मुग्धबालाकपोलम् ।
कल्हारोल्लादहीनो रहति च शशभृच्चन्द्रिकां सानुरागां
मारुण्योभाः प्रणिन्युस्तरणिसमुदये तारकालोपमेव ॥४॥

यत्प्राग्बन्धूकशोभं तदनु सुरमणीगण्डपिण्डोपमानं
पूर्वं यन्मण्डलाग्रं किरणविवलितं यत्सहस्रारचक्रम् ।
उत्फुल्लाम्भोरुहाभं द्युतिशतवलितं वाडवाभां श्रितं यद्
विम्बं तद्भानुबिम्बं मम हृदि तनुतात्स्वात्मविज्ञानमूलम् ॥५॥

मापप्तञ्जातुभूमावितिमनसिकृतं यत्करा दर्शयन्तः
प्रोञ्छ्येवाश्रूणि लोकाक्षिकमलमुकुलात्पल्लवैः श्लिष्यमाणाः ।
लोभायोषो बधूट्या विनिदधति चिरं स्थूलमुक्ताफलानि
प्राणम्यास्मायिनायाप्यहमवगमये स्वर्णदण्डावगाहम् ॥६॥

प्राणायामं वितन्वन्त्यृषय इह पुरा लोकभेदावगाहात्
स्वे स्वे कर्मण्युदास्ते न खलु परिजनः कोपि मे बन्धुभूतः ।
विद्याशिल्पं विकाशं व्रजति सरलता स्विद्यति प्रान्त एवं
येषु क्षुण्णेषु तानीक्षणमतिमतिभिर्दद्युर्चींषि गम्याः ॥७॥

आरान्मुक्तानि हन्तुं विवरपरिगतं वृत्रमुग्रं विशुद्धा
मार्गे येनानमन्ति प्रपटिमगतितो नोच्चलन्तिस्म किंच ।
ये दृष्टा मण्डलाग्राद्धनुष इव शरास्ते जितास्ते हरेर्मे
ह्युस्राः शम्बोपमानाः कलिकलुषकुलं निर्दलन्तु क्षणेन ॥८॥

कैलासं मेरयन्त्यो हरवपुरनघं तज्जटायुक्तयन्त्यो
मेरुं चाप्येकशृङ्गोत्थितरुचिविभवं स्वर्णपल्यङ्कयन्त्यः ।
कह्लारान्पुण्डरीकानसितसरसिजान्बिम्बकांश्च द्युनद्यां
एकीकृत्याम्बुपूराद्यपिजगदखिलं तद्द्युतेर्भागयन्त्यः ।।९।।

आकाशं धौतयन्त्योऽरुणकरमशनैश्चंद्रिकां ह्लेपयन्त्यो
ज्योतींष्युच्चावचानि प्रमुषितकिरणान्यम्बुधौ मज्जयन्त्यः ।
लोकानुन्नेत्रयन्त्यः शुचिरुचिरुचिरैश्चर्वणैरुष्णदीप्ते-
र्भासो वः शं दिशन्तु श्रुतिरटकबटूंश्चापि देवर्षयन्त्यः ।।१०।।

ऊर्ध्वं धावन्त्यनुष्णा निखिलमपि पदं वैष्णवं वर्धमाना
ये भूर्लोकं समस्तं क्षणपरिचयतो रञ्जयित्वाविशन्ति ।
येभ्यो भीत्या जुगोप स्वमपि बत तमस्तुल्यमुद्ग्राह्य लोके
पातालं क्वापि तेभ्यो नम इदमनघं भास्वतः स्तात्करेभ्यः ।।११।।

पीत्वाम्भो ये प्रवर्षन्त्यमृतमिव रसं ग्राहयित्वौषधीभ्यो
ये धर्मं वर्धयन्ते श्रुतिविहितमतेः कर्मणामादिमूलम् ।
येभ्यो जातं जगद्यज्जनितमिव पुनर्वीक्षते जीवलोको
जन्मान्धस्ते समग्रां श्रियमभिमतये स्वं जनं प्रापयन्तु ।।१२।।

आकाशं व्यश्नुवाना निखिलमपि तता ये समन्तादमान्तः
पिण्डीभावेन तत्तामपिबत तरसैवोत्सहन्ते स्म भङ्क्तुम् ।
सूक्ष्मा येषां प्रणाल्यो ह्यपि दधति दिशः संहतास्तन्तुरूपै-
श्चित्रैरुत्क्रान्तावर्णा श्रियमनुदधतां तेंऽशवस्तेऽसरूपाम् ।।१३।।

चक्षूंष्युल्लासयन्ति स्फुटकमलकुलैः साकमारोहवन्तो
घूकानां नेत्ररश्मीन् परित इव दहन्त्यञ्जनेनैव सार्धम् ।
कोकानां शोकनाशेऽशनिरिव विहितो यन्नियोगो विधात्रा
मात्रारब्धं तनुत्वं मम दिवसपतेस्ते करा ह्रापयन्तु ।।१४।।

प्रकीर्णश्लोकाः

दृप्यद्दानववक्षसीन्द्रकुलिशाघाताङ्किते कोमलाः
    शीघ्रं नावतरन्ति साहसिकताभीतेरिवोत्कण्ठया ।
या लक्ष्मीवदनेऽक्षमापरिचयादालोहिता द्राक्क्षणा-
    द्दृष्टाः सन्तु शुभायता नरहरेः स्निग्धा नखाग्रत्विषः ॥१॥

दर्पोद्दाममहेन्द्रदन्त्यभयदा हारे हरे हीरके
    क्षुभ्यन्त्यः प्रसभं निशाकरकरासङ्गात्सुधाविद्विषः ।
याः स्वर्गं गतया विरुध्य सरिता श्लिष्यन्ति तारागणं
    क्षीराब्धेर्लहरीरुपर्युपरि ता राजन्भवत्कीर्तयः ॥२॥

यस्या मेरुहिमालयौ कुचयुगं तुङ्गं दरीदृश्यते
    या विष्णोर्गृहिणीभ्रमात्प्रवृणुते नैतद्विशालाम्बरम् ।
या गोष्ठीषु रणाङ्गणे कुलगृहे गङ्गेव गीतागुणैस्
    सा कीर्तिस्तव भूप न व्यभिचरत्येतद्विचित्रं सताम् ॥३॥

आत्मानं वीक्षसे न प्रकृतिचपलताशालि नाधारदृष्टि
    स्वस्मिन्नल्पाभिमत्या पुरत इव परं लोकसे नापि नारात् ।
लोके सन्तोषवृत्तिं स्वयमिव तुलितं लाघवात्संप्रतन्वत्
    सर्वग्रासाभिलाषात्परिपतसि मनो यद्धि मे तन्न रुच्यम् ॥४॥

अवश्यमेवोत्तमकाव्यतावतां
    सुखं सदैवानुकृतं स्वचेतसा ।
परे परेतासुवदुच्छ्रितव्यथा
    न किञ्चिदालोच्य सुखीभवन्त्यहो ॥५॥

न बाह्यवस्तूपचयोपपादितस्
    तथा स्वदत्येष नृणां स्वतारसः ।
यथाऽऽत्मना कल्पित एव तन्मती
    दधाति तेभ्योतितमां परां मुदम् ॥६॥

करे धृतश्चेद्भवताऽस्मि नाथ
न मेऽस्ति भीतेरपि लेशमात्रम् ।
संभाव्यते कीशशिशोः स्वमातु-
रङ्कान्निपातो न बिडालकस्य ॥७॥

उत्थाप्यारोप्य शैवं धनुरमरपुरीह्लादनं यस्ततान
शब्दं ब्रह्माण्डपिण्डप्रतिरवविततं रक्षसां सम्मदघ्नम् ।
यस्यार्धे द्राग्दृगन्ता अपि गिरिश धनुर्भङ्गसञ्जातरोषा
जानक्या वक्त्रशोभामधुरुचितमिव श्रेयसे मेऽस्तु सोऽसौ ॥८॥

अनित्यताऽऽक्रान्तमिदं समस्तं
जगन्न सन्तोऽपि वसन्ति केचित् ।
वियोगरोगादिविबाध्यमाने
धृतिं क्व विद्वान्समुपैत्वमुष्मिन् ॥९॥

कालिकास्तुतिः

काञ्चिन्नूत्नाम्बुदाग्र्यद्युतिचयरुचिरां चारुचन्द्राननाभां
दिग्वस्त्रां श्रोणिबिम्बे नरकररशनां भूषणं कल्पयन्तीम् ।
पीनोत्तुङ्गस्तनाऽऽढ्यां विदिशि वृतां फेरवैर्दीर्घरावां
घोराकारां करालैर्भुजगपतिकुलैः सेवितां संश्रयेऽहम् ॥१॥

नाट्येनारुह्य शैवं शवमतिसुषमं खिद्यमानैरिवाङ्गै-
र्वक्षःश्रोण्यूरुभारार्दितललितप्रदं विभ्रमन्यस्तदेहाम् ।
व्यात्तास्यां तीक्ष्णदंष्ट्रां चिकुरकवलितामुल्ललल्लोलजिह्वां
कारुण्याक्रान्तचिन्तां कलिकलुषहरां कामये काञ्चिदेकाम् ॥२॥

या ध्वान्ताभापि हार्दं व्यपनयति तमश्चिन्तया भापयन्ती
क्रूराकारा कृपार्द्रा करुणमतिरुषा सृक्कणी लेलिहाना ।
दिग्वस्त्रैश्वर्य्यलोला शिरसि पतिमतीनां च या मुक्तकेशी
कामोन्मत्ताप्यकामा स्मृतिशतललितं मे मनः सा विधत्ताम् ॥३॥

संसारः सारहीनोपि तु भवति गुरू रोचतेयत्प्रभावाद्
या तद्बीजं प्रकृत्या रतिमतिसुखदा तत्र यज्जातिरेव ।
भुक्तिर्मुक्तिर्विमुक्तिः स्मृतिधृतिमहिता ज्ञानविज्ञानलब्धिः
सर्वं यस्या वशे सा मम मनसि सदा सन्निधिं संविधत्ताम् ॥४॥

कल्याणः कल्यवेषः कलितललिततो ह्यास्यभीत्येभूमिः
क्रोधान्धः क्रूरकल्पो ह्यतिकरुणतया कृत्यकाले कृपार्त्तः ।
यो वात्सल्यैकवित्तः सकलरसजुषां योगिनामप्यगम्यो
मूर्तोऽशांशो भवानि प्रतिहतमतये मह्यमिद्धः स तेऽस्तु ॥५॥

केषां कर्माणि धर्म्याण्यपि न मतिमतां त्वत्प्रसादादसिध्यन्
के वा स्युर्वीतरागा न तव पदनखालोकतो लब्धविद्याः ।
के वा कान्तावलोका विषयसुखधियः काम्यतां नो समीयुः
कामेनार्ताः कृपालोस्तव जननि दृशामाप्य कोणैकदेशम् ॥६॥

कालिन्दीकालकान्तिः कमलकुलसखीकिन्नरीकम्रकण्ठी
कन्दर्पप्रीतिदा कुञ्जरवरगमना कामिनीमौलिरत्नम् ।
कर्णान्तभ्रान्तनेत्रा करपदवलयन्यस्तकुम्भीनसालिः
कृष्णा कृष्णस्वसा कं कलयतु कुशलं कालिकाकीर्णकेशी ॥७॥

येषाङ्कान्तिप्रवाहः स्तनजघनभरक्लान्तपादाङ्गुलीनां
रक्ताम्भोजोन्नताभिश्छविभिरभिजुषन्नुच्छलल्लोहिनीभिः ।
कालिन्द्येवाङ्गकान्त्याऽप्यधरितसुरुचिर्गाङ्गवार्योघशोभां
बिभ्रद्वेणीं निरस्यत्यवनतवपुषां भूतये ते नखाः स्युः ॥८॥

लाक्षासारावसिक्ते समरुचिरतलोत्कृष्टलावण्ययोगा-
द्रक्ताम्भोजोदरेषुश्रियमतिचपलां रञ्जयन्ती चिराय ।
जङ्घाकामाग्र्यकाण्डानुपमफलकि ते कूर्मपृष्ठोन्नते वः
शैवप्रेमैकपात्रे सललितगतिके भूतयेस्तां पदे ते ॥९॥

जङ्घे ह्रस्वे सुवृत्ते क्रमपृथुलतया साकमारोहशीले
निर्लोम्नीमीनकेतोरतिभवविजयं ख्यापयन्तीपताके ।
शृङ्गारोल्लासितारे इव सुशितिरुचीमत्तनागेन्द्रशुण्डा-
दण्डाग्रोद्दण्डशोभे शिवशववसिती चण्डि भूत्यै भवेताम् ॥१०॥

रम्भास्तम्भाववाञ्चाववनिमुपगतौ स्वं वपुस्तापयन्तौ
निस्सारत्वप्रहाण्यायिति कविवचसां दूषके भाजने यौ ।
श्यामौ निर्लोमनीतौ करभकरिकरप्रख्यबान्धुर्यशीला-
वूरू मारध्वजाभौ रतिमतिसुखदौ भक्तवृन्दस्य भाताम् ॥११॥

कामस्यैकं रथाङ्गं पृथुरतिविपुलश्छादितश्छिन्नपाणि-
श्रेणीकाञ्च्या समन्तात्प्रविदितसुषमः पञ्चवक्त्रस्य पत्युः ।
मध्यस्याध्यध्ययोग्यः क्रशिमपरिहृतेर्वाससाच्छादनस्य
श्रेयोमार्गं नितम्बः पितुरिव हिमवत्कन्यकायास्तनोतु ॥१२॥

नीलं शृङ्गारभासामसृणमतुलनं काममत्तेन्द्रदन्ति-
क्रीडावेशन्तमुख्यं घनमतिविपुलं संवृताप्रावृतं यत् ।
भिन्नं न भ्रामरालीमुकुटमणिरुचां शक्रचापानुकृत्या
काल्यास्तन्मे जघन्यां प्रहरतु जघनंबुद्धिमिन्दीवराभम् ॥१३॥

स्निग्धं निर्लोमकिञ्चिच्चलदलकुलजं पत्रमाकार्यमाण
मारस्यैकान्तधामप्रियवरनयनानन्ददं यत्नगोप्यम् ।
अङ्गं हैयङ्गवीनोपममृदु विपुलं सून्नतं सौभगार्थं
पद्मां पद्माननाभामपि जलजवनादाह्वयच्छ्रेयसे स्यात् ॥१४॥

यत्केचित्सूच्यभेद्यं पर इह विबुधास्तेऽणिमानं गृणन्ति
प्रत्याचष्टे मृगेन्द्रोऽप्यवनतिमुररीकृत्य यत्साम्यशोभाम् ।
यन्नीलं व्योम्नि कान्त्या शबलितमिव सन्मुष्टिमेयानुमेयं
मध्यं तन्मध्यमाया गिरिशिखरसमं पापपुञ्जं धुनोतु ॥१५॥

लावण्यौघो य इत्थं मदनशिखरिणः शृङ्गयुग्मं सुदूरा-
दाक्रम्योच्चैः पतित्वा परित इह परं पुप्लुवे निम्नभागम् ।
तस्यैते प्राक्तरङ्गास्त्रिवलितवलयः शेवलाली विभिन्ना
भङ्गं नाभीह्रदेऽस्याः कथमिव तु गताः स्वेन चित्रीयते मे ॥१६॥

ग्रीवा कम्बूपमेया जननि तव दृशौ कृष्णतारान्तरक्ते
वक्त्रं दंष्ट्राकरालं क्षरदसृगधरः प्रोल्ललन्ती सुजिह्वा ।
कीर्णाः केशाश्च पश्चाद्रिपुकुलमखिलं भक्तवर्गं पतिश्च
साम्ना जित्वा जयन्ति प्रतिभयमभयं मोदमुज्जृम्भयन्तः ॥१७॥

भगवति महामाये तुभ्यं ममास्तु नमो नमः
प्रभवति पुमान्मादृक्को वा तवाद्य गुणस्तवे ।
भवति भवतीं स्तोष्यन्नार्यामनार्यचरित्रभा-
गययिह जनः सज्जं चेतस्तनोति कथञ्चन ॥१८॥

कथमपि कुलाचारप्रोत्साहना यदि खल्वमुं
नयति भवती पार्श्वे बालं बिभर्ततितरां क्वचित् ।
व्यभिचरति वाम्यं स्वं नायं तदा तु शिशुः स्वयं
कथमिव जनन्यार्ये कार्ये प्रतीतिमुपैष्यसि ॥१९॥

बहु निविशते चेतः स्वल्पं बहिर्वदनाद्भव-
त्यथ च खलु चित्किंचिद्वक्तुं करोति तु साहसम् ।
भवति भविनां दृष्टः सोऽयं स्वभाव इति त्वया
कथमपि घृणा धार्या नास्मिन्स्वभावभवाभवे ॥२०॥

यदि न दधतामात्मा मेऽयं पराभवखिन्नधीः
स्वहृदि वदितुं स्वच्छामिच्छां सरोरुहलोचने ।
कथमिव भवेत्प्राणोद्योगः कुतः स्तुतिरीदृशी
मनसि भवति प्रायो भूयो ममेह विजृम्भते ॥२१॥

परमिह मया ह्यात्मा तुभ्यं न, देवि समर्प्पितः
किमिति बहुधा धाराक्रान्तं मनोऽस्य न लक्ष्यते ।
यदि न कुरुषे काञ्चिद्भूतां कृपामयि भाविनि
प्रभवविभवो नाशं नूनं जनस्य गमिष्यति ।।२२।।

विदितमहिमो नायं भूयो न वादृतलाघवो-
प्यविहितमतिर्वाचामुच्चैरपाटवदूषितः ।
विरमति ततः सत्यं स्तोष्यन्स्तुतेरिह मार्मिको
जननि भवती तस्मै नूनं बिभर्त्ति दयां च किम् ।।२३।।

कर्तव्यनिर्णयः

शिवसेवासूद्योगो व्यायामः कर्मठत्वपरमा धीः ।
निष्फलविषयिण्यरतिर्गुरुभक्तिश्चेश सन्निदध्युर्मे ।।१।।

आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नात्तदनु बत मनः खानि वर्ष्मापि भव्यं
भूयो भाव्यं भवेऽस्मिन्भवगतललितात्सङ्गताद्भूतिभाजा ।
मित्रैः सार्धं विधेयं हृदयमपगतं स्थापनीयं स्वबन्धो-
र्व्यायम्यं तुष्यता चाभिमतिविरहितेनैहिकं चिन्तनीयम् ।।२।।

ज्ञातीनां द्वेषवह्निर्नयसलिलभरेणाशु संप्लावनीयः
शत्रुर्नीत्या विनेयो विनयमधुरया वर्तितव्यं गिरा च ।
पुत्रभ्रात्रादि सर्वं जगददिमथवा स्वात्मना तुल्यमूह्यं
लोको विज्ञाय सेव्यो न पतति हि तथा चात्र वामुत्र सोऽयम् ।।३।।

नास्तिक्यं भावनीयं स्वयमिह न पुनश्चिन्तितं चेन्निवर्त्यं
वार्या अन्ये प्रयत्नात्परिहृतगुरवो वैतथा वर्तमानाः ।
साधौ देवे द्विजे राजनि जनितगिरा चारुभक्तिर्विभज्या
भज्या नो नीतिवल्ली हरति खलु मनो या हि मल्लीलतेव ।।४।।

निन्द्या न स्वोपभोगाः कथममि गुधियाऽनिष्टमन्यैः कृतं वो
चित्ते धार्यं चिरान्न क्षणमिह न तथा लम्बनीय स्वकार्य्यम् ।
प्रीत्या योज्योऽयमात्मा गुरुजनवचसि स्निह्यता भाव्यमित्थं
सर्वं संक्षिप्य साधो त्वमसि निगदितश्चारु वर्त्माश्रियार्थम् ।।५।।

प्रकीर्णश्लोकाः

पुराहमिष्टेन यथा प्रहृष्टे ममैव संपत्तिरियं मनोज्ञा ।
तथास्मृतिस्ते नितरां मनोमे विदारयत्यद्य तदेव दुःखम् ।।१।।

निरस्यतोऽसूनिषवो न दृष्टा न कौसुमं चापमलेः कुलं न ।
स्मृतिस्तवैका ममतापहेतुर्वामाक्ष्यनङ्गो न मतस्त्वदन्यः ।।२।।

तवैव चित्ते बत चारुमूर्तिस्त्वमेव निद्रा परदेवनी च ।
श्वासास्तवाऽऽशामनुमन्य वृद्धास्त्वं जीवनालम्बनमेव मेऽङ्ग ।।३।।

न जानते ये प्रणयोपरागं तेषां सुनीतिर्न ममापि मान्या ।
नयानयौ यौ न सुखावहौ तौ सुखस्य मार्गात्परमाद्विभिन्नौ ।।४।।

त्वां मल्लिवल्लीमिव सह्यवाप्य स्मितप्रसूनं निशितान्दृगंशान् ।
रोलम्बमालामथ केशपाशं भवत्यनङ्गोऽपि भवे कृतार्थः ।।५।।

चार्वञ्चितभ्रूधनुषा तवामी तीक्ष्णाः कटाक्षाः प्रविशन्ति चित्तम् ।
न सूपदेशे न भिषग्वरेण युक्त्यापि नीत्या बत निर्ह्रियन्ते ।।६।।

येषा स्मृतिर्या सुखयत्यनल्पं नितान्तचारूत्पलपत्रशोभा ।
कथन्नु तेषामपि तां विलज्जः स्वकीयहृच्छल्यमनुब्रवीमि ।।७।।

पुरो रन्तु शयानाया वल्लभाया ममप्रिया ।
करं दक्षिणमादाय दक्षिणे निदधे स्तने ।।८।।

बीजं वसुन्धरादेवी काले व्युप्तं कृषीवलैः ।
सहस्रगुणितं कर्तुं नयति व्यवसायिनी ।।९।।

क्षन्तव्योऽहन्त्वया नाथ करुणाकरबन्धुना ।
मोच्योऽपराधादज्ञानी नैतदद्यतनं वचः ॥१०॥

कोऽयं काये कृतान्तः प्रहरति न मनाक्लक्षयित्वाऽवकाशं
कामो वा वामवेषः प्रविशति हृदयं भ्रूधनुर्वर्द्धितौजाः ।
शान्तिः प्राणान्तिकं मां कथमिव विबुधाः संश्रययिष्यत्यनन्ते
स्वेऽदृष्टे दत्तदृष्टिर्विवशयति मनो मेऽयमात्माऽविवेकात् ॥११॥

अयं विधेरुद्यतलाभलोभाद्
भयं परित्यज्य पुमान् प्रवर्तते ।
परन्तु तस्यानुपमागतिर्यतः
पलायमानोऽपि नरो निगृह्यते ॥१२॥

अस्मिञ्जडजङ्गममयजगति प्राणी स एव मुख्यः खलु ।
यः स्वेनैतत्सर्वं व्याप्नोत्युत्तमयशःपुरोभागी ॥१३॥

विहितागसमुद्धताकृतिं प्रणमन्तं परमेशपादयोः ।
यदि नाम समुद्धरिष्यसे मम सैवानुपधा दयालुता ॥१४॥

इमामासाद्य पुरुषः श्रीमानानन्दवाटिकाम् ।
न शोचति न वा काङ्क्षत्येकं तं विभुमाभजन् ॥१५॥

सतां भोग्या संपद्विनयमधुरो वाचि नियमः
शरीरं धर्माय प्रथति हृदयं भेदहतये ।
नृणां येषां लोके कथमिव न ते बन्धपदवीं
प्रयातारोऽस्माकं परिणतधियः कार्यकुशलाः ॥१६॥

अमायां दिवसाधीशं पूर्णिमायान्निशाकरम् ।
वैरानुबन्धी ग्रसते तमोरूपो विधुन्तुदः ॥१७॥
न गुणा गता न गुणिनो विगता न गुणस्य वा विगलिता प्रियता ।
कृपणास्तु दातुमभिका गुणिने न गुणान् कथंचिदभिमन्यपरान् ॥१८॥

त्वां वाणि वीणारणनैकचित्तां वर्णाग्र्यकान्त्या परिमोहयन्तीम् ।
संसूचयन्तो विषयाः स्वमूर्त्तिं वर्णाः समे सुन्दरतां समीयुः ॥१९॥

उच्चाकाङ्क्षापरीतं जगति सुविदितं कर्मभिर्नीचनीचै-
राजन्मोज्जास्यमानप्रणिधिभिररिभिर्दत्तलब्धप्रतिष्ठम् ।
अन्यं कंचिद्विचार्योदयिनमननुगं प्राणमद्विद्वदङ्घ्रि
विद्वांसं मादृशं त्वं भगवति वसुधे मा जनिष्ठाः कदाऽपि ॥२०॥

अस्माकं भाग्यमेतत्प्रभवति वसुधे यत्त्वया सार्धमस्मिन्
काले योगोऽभ्युपेतः परमिह न सदा वर्तितव्यं तु वीक्षे ।
तद्वल्लोके न कस्मिन्निह दिशि भविता मेऽवसानो भवानि
प्रद्योतत्पादपद्मोदरदलदरुणोद्रेकरम्या ननामः ॥२१॥

दृढोग्रवेगाः शिततीक्ष्णदंष्ट्राः
शिलासु सज्जन्ति न मे पृषत्काः ।
सन्धानमाकर्ष इवैककालं
क्व मे विमोक्ष्यन्त्यरयोऽस्त्रपाणेः ॥२२॥

नागेन्द्रदेहश्चलबाजिपक्षः
शस्त्रास्त्रसन्नाहशितोग्रतुण्डः ।
स्वधिष्ठितो मन्त्रवता विराजा
निहन्त्यरीन्वै बलवैनतेयः ॥२३॥

वज्रसंहननसुन्दरमूर्तिस्ते वियोगदहनस्य न शक्ता ।
सा शिरीषकुसुमादपिजातैरङ्गकैर्न परितापमुपैति ॥२४॥

नयने मिलिते यदावयोरपि दूरं व्यवजानतोर्यथा ।
न कथं स्मरवेगशालिनी हृदये द्वे ननु भावमालिनी ॥२५॥

भगवन्तं प्रत्युक्तयः

ये नाथ लोकं ह्यनुरञ्जयन्ते तेषां त्वमित्याहुरुदारचित्ताः ।
ये मद्विधा नीचतमा मनुष्या ईशान तेषां भवसीह कस्मात् ॥१॥

लोकोऽनुरक्तः खलु यत्र कामं तेषां त्वमेषा तु ममापि बुद्धिः ।
लोकेऽनुरक्ता न च सोऽनुरक्तो नैषां त्वमित्थं कथमभ्युपैमि ।।२।।

ये साधुवृत्ता विनयातिरेकाद्विश्वात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ।
तेषां चरित्रं परिवृद्धिशालि प्रकर्षमात्रेण जगत्पिधत्ते ।।३।।

कथन्नु तन्नाथ तवात्र सङ्गो भवेदनूह्यः पुरुषोत्तमस्य ।
लोकोऽखिलोयं खलु यत्प्रसूतिर्यस्मात्त्वमुक्तः सविता पितेति ।।४।।

प्रमाणमस्मिञ्जगति त्वमेव परन्त्वलक्ष्यः क्रमशो विवृद्धः ।
कुतोऽपि लब्धं यदि चेत्तु दैवात्साहाय्यमाचामति तत्प्रमेयम् ।।५।।

प्रलापाः

न भारवेरर्थगिरो निरर्थिका
वृथा न पश्यत्यपि राजशेखरः ।
कथं न वाऽत्रद्वितये निरर्थिका
प्रसन्नकौटिल्यमतिः प्रवर्त्तना ।।१।।

पुराविदो गुप्तरहस्यमन्त्रणे
नृपस्य मन्त्रिद्वितयस्य वै गतिः ।
इति श्रुतिं द्रागपठन् रुषार्दिता
प्रपञ्च्यमापश्चजनैर्विघोषि सः ।।२।।

राजैव लोके परदेवताऽऽसीत्
स एव संप्रत्यभयं प्रयाचते ।
निहन्यते सूक्ष्मतमेऽपि दुर्गुणे-
ऽधिकारलोभाद्व्यधिकारिभिः स्फुटम् ।।३।।

अनेन युद्धेन जनस्य चक्षुषी
कृते निमेषै रहिते मृषा नहि ।
फलं भवेन्मास्म भवन्न वाऽत्र मे
न संविदाक्रामति साधु वर्तितुम् ।।४।।

प्रमत्तवाणीव मया सरस्वती
प्रवर्त्यते को विचिकित्सतां न च।
नरो नहि प्राकृत उत्तमेकदा
प्रलापिनिच्छद्मगिरो विशङ्कते ॥५॥

न रामवत्कोऽपि नृपोऽद्य पालयन्
महीं प्रशासेच्चिरकालमूर्जिताम्।
कविर्न कोऽप्यायतदृष्टिरुद्यतो
लभेत दीर्घामपि चार्यातिं जने ॥६॥

कविर्न देशे रसिका न भूतले
न भूमिरेषा विदुषां पुरातनी।
ऋषिर्व्यगादार्षपथं सुविश्रुतं
कृपालवः कुत्र मनो न धावति ॥७॥

यदार्थलोभाद्गुणिनः पराहता
मतिः पुराणं कृपणत्वमाश्रिता।
समुन्नतिः स्यात्किमु देशवासिनां
विवेचयन्नात्र लभे विनिर्णयम् ॥८॥

अनर्थकं सर्वमिदं भविष्यति
प्रणीतगीतं मम मड्डुकोक्तिवत् ?
अतो निराशोऽत्र लिखामि नाधिकं
प्रवृत्तसंविद्व्यवहारकिल्विषी ॥९॥

न मातरार्य्ये मयि दासवज्जने
कथं कृपालुर्दयसेऽधनेऽपि च।
अहं न जाने स्वमपीहितं कुतः
परस्य बुद्धयेयमदो निरर्गलम् ॥१०॥

७

काश्यां ज्वरः प्रसृत एष नितान्तघोरः
सर्वो बिभेति न च मां प्रति तस्य लेशः ।
काये जरामरणसेविनि भास्करस्य
रोचींषि किन्न नियमं न न वर्तयन्ते ।।११।।

चेद्धेतुरस्य कलुषो जलवायुसङ्गो
भीतः पलायनमहो न न साधु मन्ये ।
सर्वः पराजयमुपैति हि कालयोगात्
बुद्धेः पराभव इति व्यथितं मनः स्यात् ।।१२।।

अनन्तबुद्धिर्बहुमार्गसेवकः
पुरैव बाल्याद्व्यचरं स्वतन्त्रतः ।
शिवेऽनुरक्तः शिवयोः पदौ जुषन्
उदारतामास्म भवद्गता क्वचित् ।।१३।।

न मे भास्करानन्दसाम्यं शिवं स्याद्
विशुद्धे परे मे न संमानयोगः ।
न कौटिल्यतुल्या गतिर्लज्जयित्री
नरं पाणिनेराद्यशिष्याभिमानम् ।।१४।।

स्वाभाविकः खलु गुणो न विसंवदेत
काम्यासु नूनमबला सुमतं ममेदम् ।
सन्देग्ध्यसूयति जनः खलु तत्र योऽयं
तत्रैव मेऽभिनयते विषमं हि दृष्टिः ।।१५।।

राजँस्त्वत्कीर्तिवल्ली सुवति मधुफलं सद्गुणेनानुविद्धं
यत्तद्भूपा न हर्त्तुं क्वचिदपि जगतामुत्सहन्तेऽपि मुख्याः ।
केषांचिद्धीमतां त्वत्परिचरणवतां दृश्यते योऽनुकारः
सोऽयं गौणो न सत्यं मदयति विदुषां मादृशानां मनांसि ।।१६।।

श्रमाल्लब्धदूर्वादलानां प्रदानाद्
गवां नोपकुर्यान्न वै पण्यगन्त्री ।
अनायासभोग्यात्तु वित्तात्कुदैवा-
त्परस्योपकारे परे सङ्कुचन्ति ॥१७॥

धन्योऽसि पक्षिवर यः फलपुष्पपर्ण-
मूलादिवृत्तिरिह निर्जनकेऽपि तिष्ठन् ।
पुण्ये गिरीन्द्रशिखरे प्रणिधाय नित्यं
नामारटस्यभयदं परमं शिवस्य ॥१८॥

दोषान्खलान्खलु बुधा निखिलान्क्षमध्वं
सत्त्वेन गौरवतया मम शैशवेन ।
सर्वं शिवात्मकमिदं मयका प्रदृष्टं
तत्राचरामि च यथामति बुद्धियोगात् ॥१९॥

पुष्यन्सरिद्वरसुचन्दनवारिलेखाः
शैलाधिराजशिखरेण खमुत्थितेन ।
देवस्य कस्य हृदयं परिलोभ्य शुद्धं
धात्र्याः पयोधर इवातितरां विभासि ॥२०॥

यः प्रस्तरत्वमभिधाय दुरन्तबुद्धि-
र्नैयायिकेन्द्रमहसद्विमतां च मुक्तिम् ।
मन्ये न पर्व्वतपते तव चारुमूर्ति-
स्तस्यापि भाजनमभून्नयनद्वयस्य ॥२१॥

त्वां पर्वतेन्द्र दिवमाक्रममाणमेकं
दृष्ट्वा महेश्वरमिवापरमेधमानम् ।
कालेन केन लघुनाऽपि तु सावधानः
कामान्परान्न खलु कान्मनसा बिभर्मि ॥२२॥

मौण्ड्यादि यन्नाम पलायनार्थं
न तत्र बुद्धिः खलु काचिदस्य ।
अथैवमर्हत्यधुना विवेक्तुं
कः स्वप्नबोधानुपरागतुल्यान् ॥२३॥

स्वप्नावबोधेऽप्युपलक्षकत्वं
यथाकथंचित्प्रकृतेश्च नित्यता ।
प्रारब्धदोषा विबुधेऽपि दृष्टा
भविष्यतोऽर्थस्य न च प्रतिक्रिया ॥२४॥

अधःप्रपातो न यथा नगाग्रा
न्मायोपशान्तिर्द्वितयस्य चैक्ये ।
मित्रं तथैकं परिशुक्लवासा
द्वयोर्विवादश्च विदिग्गमार्थम् ॥२५॥

स्वप्ने पश्यन्निन्द्रसेनां मनीषी
भेत्ता बोद्धा बोधिता चापि नन्ता ।
मन्ता याता साम्यमायन्नभिन्नः
स ह्येवात्मा सोऽन्तरिक्षं मही वा ॥२६॥

मनः समाधाय यदेकलग्नं व्यपेतमोहः परिपश्यतीह ।
तदेव जानाति विशुद्धबुद्धिर्बुधः प्रभाते बहुशोऽस्ततन्द्रः ॥२७॥

ब्रह्म यदा दुर्ज्ञेयं मन आदीन्द्रियगणातिशाय्यात्म ।
सर्वं सर्वत्र कथं तदभिन्नं भवतु सुकरविज्ञानम् ॥२८॥

ईश्वरः सर्वसर्वेश्वरः साक्ष्ययं
व्याप्य खं मूर्ध्नि हृद्येव सन्तिष्ठते ।
अन्तरा येन जीवो निर्यैय्यम्यते
स्वप्नदृग्बाललीलां ललौ सोऽन्तवत् ॥२९॥

केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।
हृदयाह्लादनं पुण्यं दुःखनाशनमद्भुतम् ॥३०॥

मित्रपुत्रकलत्रेषु पूर्वं पूर्वं विशिष्यते ।
परेभ्यः स्वगुणैरेवं सतां मतमुदारकम् ॥३१॥

कलत्रपुत्रभृत्यादि विशेषस्थलसेविनः ।
मित्रं सर्वास्ववस्थासु तारयेदापदो बलात् ॥३२॥

गुणैः समानाः पुरुषा दुर्लभा जगतीतले ।
विषमस्य च मैत्री नो दुर्लभाद्दुर्लभा हि सा ॥३३॥

अविभज्यैव संबन्धं योऽर्थान्सूक्ष्मेण तन्तुना ।
लोके साधयते धीमान् स हि प्राज्ञतमो मतः ॥३४॥

विशेषबुद्ध्या सामान्यबुद्धयो यत्र वञ्चिताः ।
निर्विशेषा जनास्तत्र नेन्द्रजालं न मन्वते ॥३५॥

समस्तव्यस्तानां समुदयजुषां ज्ञानसरणिः
कथं वोपास्या स्यादहमिति मदान्धोद्धतधिया ।
न चन्द्रात्प्रह्वन्नो निखिल इह लोकः क्वचिदपि
प्रभापूष्णो विज्ञैर्न च खलु विगीतोन्नतिमती ॥३६॥

संसारेऽसारतां दृष्ट्वा तथाऽऽत्मनि च नित्यताम् ।
गवेष्यतां गुरुः पूर्णो मोचयेत ततो हि यः ॥३७॥

एकान्तसेवी लघ्वाशी मितवाङ् मितसाधनः ।
ध्यानाहारो निर्विषयो वियोगी योगिवन्मतः ॥३८॥

क्रुध्येन्न धीमान्धियमत्युदारां
रक्षेत्सदा स्वां विनयेन येन ।
सेवेत तं वैधृतिमेव पुष्णन्
क्रोधोऽन्धकारः खलु चेतसो यत् ॥३९॥

पुमान्स एको नृषु संमतो मे
य उत्थितं स्वं गुणदोषवर्गम् ।
संवर्द्धयेद्वा निनिघातयेद्वा
यथोपपत्यैव हि धर्मकामः ॥४०॥

सर्वास्ववस्थासु धृतिर्मनुष्यं
रक्षेद्दुरन्ताद्वत बुद्धिलोपात् ।
परन्तु सा सत्त्वगुणातिरेका-
त्स्वभावसिद्धा न ततोऽन्यथा हि ॥४१॥

निम्नोन्नतां वीक्ष्य गतिं स्थितिं मतिं
चित्रामचिन्त्यां समताविमोहनीम् ।
धनास्थया धीरतया वशी कृती
समाचरन्याति न दुःखमुत्तमम् ॥४२॥

पुरा न्यभांत्सुर्विषया विमूढं
यं ग्राम्यभोगेषु समासजन्तम् ।
न सिद्धिजालानि कथन्नु तस्मै
स्वान्यर्च्चयेयुर्ह्यृषि संस्तुतानि ॥४३॥

किङ्करिष्यसि ममेतिभीषितः प्राह निर्भयतया यथा शिशुः ।
प्राक्परार्थविषयाववोधने ह्यक्षमः खलु तथैव मानवः ॥४४॥

वह्निरवह्निर्व्याघ्रो गौर्हालाहलमथामृतं कस्य ।
मूर्खस्य शिशोर्विरहिण एवं साम्याधिविन्नचित्तस्य ॥४५॥

विस्फार्य लोके नयने प्रपश्य
च्युतस्वभावस्य न कश्चिदस्ति ।
योगो न यस्यास्ति गुणैरनर्घ्यै-
र्नं द्वेष्टयनर्थ्यानपि योऽन्धशीलः ॥४६॥

द्वारकाप्रभृति

(द्वारका)

अभूत्क्वचित्काचिदुदूढभर्तृका
प्रिया पुरी द्वारवतीत्यभिख्यया ।
उदग्रसिन्धूर्मिभुजोद्धृता पुरा
जनारवैः क्रोशति याऽबला यथा ॥१॥

यदीयवप्रे जलधिः समुच्छलन्
तरङ्गहस्तैर्युगतोर्ध्वबाहुमान् ।
जनेषु चुक्रोश निजं पराक्रमं
विभुत्वभूम्ना समतां दिवोऽपि यन् ॥२॥

हरिन्मणीनामुपकल्पितं व्रजै-
र्यदीयवप्रं न घनोद्धतोऽर्णवः ।
तथाऽतिचक्राम यथा विशश्वसु-
र्जना विभेदं खलु तस्य तस्य च ॥३॥

यदीयशालं स्फटिकोत्तरप्रभं
दिवस्पृशं चन्द्रमरीचिशोभितम् ।
पयोनिधिश्चन्द्रमिवातिवेल्लितो
मुमूर्च्छ पश्यन्नतिफेनयुक्किल ॥४॥

नितान्तमुद्वेलतया स संपुटन्
नभः कटाहेन समं महोदधिः ।
न यां प्रियां मूर्तिमिवैन्दवीं हरेः
शशाक संल्लोपयितुं मनागपि ॥५॥

जनारवो यद्विपणौ समुत्थितो
बहिः पयोधेरनुगर्जितान्यभूत् ।
तथा च तुल्या न हि ताः समृद्धयो
बुधा यदीया धनर्द्धिभिः क्वचित् ॥६॥

आसीत्पुरी द्वारवतीत्यभिख्या
श्रियातिभान्त्यप्यमरावतीं पुरीम् ।
यामध्युवासामरराजकल्पः
कृती बहून्येव दिनानि कृष्णः ॥७॥

द्वाराणि यस्यां सुबृहत्कपाटा
न्युस्नैर्मणीनामधिचित्रितानि ।
दृढार्गला युञ्ज्यतिसाधु भान्ति
नामापि पुर्य्या उचितं प्रणिन्युः ॥८॥

उवास तत्रेश्वरतामुपेयिवान्
कृती स नारायणकृष्णलाञ्छनः ।
यदीयरूपाणि बुधा विचिन्वति
प्रकर्षचित्राणि विभिन्नबुद्धिभिः ॥९॥

न यत्र पश्चाज्जडलुब्धबुद्धिभि-
र्गुरुत्वहेतोः श्रदधायि वा मुधा ।
न वा यशः कोमलमाश्ववाप्नुवत्
समानकालेन तथा निजुह्नुवे ॥१०॥

कृष्णः

स जन्म लब्ध्वा वसुदेवमन्दिरे
श्रिया शरीरेण बलेन कीर्तिमान् ।
अवाप्य कौटिल्यगतिं चिरन्तनीं
पुरीमुवासाधिसमुद्रमुच्छ्रिताम् ॥१॥

इतस्ततः स व्यतियाप्य शैशवं
रिपून्समुच्छिद्य पराक्रमोर्जितः ।
अमन्यतोरूणि कृती क्रमाण्यहो
अहो शिशुक्रीडनकानि शंभुवत् ॥२॥

अधीत्य विद्याः स गुरोः प्रकाशिनी-
स्त्रिवर्गसेवी विबुधैरुपाश्रितः ।
श्रियाऽधितष्ठौ पुरुषोत्तमस्तदा
समानमानान्सुहृदो रिपूनपि ॥३॥

न तस्य बुद्ध्याधिषणः समो भवे-
दपारिजाताममरावतीं न यः ।
समुद्दधार स्वबलेन शस्त्रविद्
बलारिचेतो व्यथितं धियाऽन्वयन् ॥४॥

न विष्णुरुद्रावनुयातुमर्हतः
पराक्रमं तस्य जगत्यनीश्वरौ ।
स लोपयामास यशस्तयोर्यतो
जिगाय गीतार्थनयेन तावपि ॥५॥

जगुस्तदीयं मधुरं यशस्तदा
त्रिलोकभर्तुः सममेव मानवाः ।
सुरास्तु तं वीक्ष्य ततोऽधिकं मुदा
प्रतुष्टुवुः स्निग्धतयैव लालिताः ॥६॥

प्रलम्बबाहोः सुललाटशालिनः
कुशाग्रबुद्धेः परिणामदर्शिनः ।
यशो न शक्रो न मतिं वृहस्पतिः
कदापि यायादिति धीयते मतिः ॥७॥

न चन्द्रमास्तस्य मुखश्रियं श्रयेत्
कलङ्कितत्वादिति साधु मन्मतम् ।
असिस्मरद्वर्णमपीह यत्क्षणं
नभो विभुत्वं समुपेयिवत्ततः ॥८॥

स एकशङ्खः खलु कन्धराश्रियं
धियाऽनुकुर्यादिति मन्यते मया ।
मुखानिलापूरित एव पद्मवद्
विकश्य हस्तेन सुखं जहौ यतः ॥९॥

वृषोन्नतस्कन्धमहीनकन्धरं
विशालवक्षः प्रतिरुद्धयौवनम् ।
मृगेन्द्रमूर्त्तिं पुरुषस्य पौरुषीं
न तं नरेन्द्रा अपरेऽन्वयुर्हरिम् ॥१०॥

सकामता वामतयैव शोभिनी
सकामवामासु तथा न तं प्रति ।
न काममूर्त्तौ विहितादरा हि ता
निकाममस्मिन्पुरुषेऽनुरञ्जिताः ॥११॥

न तस्य कीर्त्तिर्यश एव वा नृणां
भवेत्कथञ्चिद्धतबुद्धिगोचरे ।
स्वमूर्त्तिरेवास्य यतः प्रभामयी
न साम्यमेत्यत्र सदा जगत्त्रये ॥१२॥

भगवत्स्मरणम्

यन्नेत्रकान्तिविसरस्नपिताखिलाङ्गी
दुग्धाम्बुधिं स्मरति नैव कदापि पद्मा ।
चञ्चन्मुखेन्दुरुचिमोहितविश्व एष
श्रीकृष्णदेव इह नाम भवद्विभूत्यै ॥१॥

यत्पाणिपद्मकलितः सुरसुन्दरीणां
कण्ठोपमानमभजत्सुकृतेन शङ्खः ।
खं द्योतयत्यविरतं खलु यस्य दृष्टिः
श्रीकृष्ण एष इह नाम भवद्विभूत्यै ॥२॥

यस्यानुगाः सरसनिःसृतबाष्पपूरा
ध्यायन्ति न स्वमपि यज्जडचन्द्रकान्ताः ।
तस्यैव कीर्तिरिह कल्पलतेव विष्णोः
त्राणं करोतु तव मित्र निरन्तरं सा ॥३॥

यस्यातिचारुचरितान्यधिचित्रितानि
चित्रय्य नाम कवयोऽपि विचित्रितन्ति ।
कृष्णाकटाक्षरुचिरः कलितानुकम्पः
श्रीकृष्ण एष इह नाम भवद्विभूत्यै ॥४॥

यद्वक्त्रकान्तिमभिवीक्ष्य सुधाकरोऽपि
ह्रीतो बभार झटितिस्वमुखे कलङ्कम् ।
कान्तामनोहरगुणोऽखिलविश्वकान्तः
श्रीकृष्ण एष इह नाम भवद्विभूत्यै ॥५॥

स्वोक्तयः

छायाकवित्वं लभतामयं चे-
न्ममान्तरात्मा खलु नावशिष्टम् ।
जगत्यमुष्मिन्प्रणतार्थिगत्या
याचे वरं देहि परं हि वाणि ॥१॥

महाकवीनां कृतिनामवाप्य
श्लोकानभाग्योऽहमचूचुरन्तान् ।
छायाकवित्वं ननु मादृशानां
न लङ्घनीयं खलु काव्यमार्गे ॥२॥

महाकवीनां न यशो ममेप्सितं
नताननादर्त्तुमथायमाग्रहः ।
बिडम्बयन्नेव सतां सरस्वतीं
कदाचिदीयात्कवितां कविर्नवः ।।३।।

कस्यापि चेत्प्रतिकृतिः क्रियते न तेन
तस्योत्तमस्य तु तिरस्कृतिरञ्जसैव ।
सा तु क्षणे यदि न तत्सुषमाऽत्रक्लृप्ता
क्लृप्तापि वा तमपि चेद्व्यवधातुमेव ।।४।।

वंशगाथा

अथोत्तमा वंशभृतां द्विजर्षभा
महर्षिशाण्डिल्यकुलोद्भवा परे ।
त्रिपाठिनो नाथमणिप्रभृत्युपा-
धिशालिनस्तिष्ययुगेऽपि बभ्रमुः ।।१।।

बभूव तेषां भ्रमतां महौजसां
ध्रुवा स्थितिर्नैव कदापि कुत्रचित् ।
स्वचातुराश्रम्यजुषां तपस्यया
सदैव वेदाध्ययनादिशीलताम् ।।२।।

हिमालयाद्दक्षिणतस्त्वनुत्तमं
स्वपुण्यदेशं निवसद्भिरुत्तमम् ।
समीक्ष्य शास्त्राणि न तीर्थयात्रया
विना कलिङ्गादिषु तैः प्रजग्मिरे ।।३।।

झषामिषादि श्रुतियज्ञसेविभिः
स्वजैनबौद्धत्वमपाचिकीर्षुभिः ।
उपाददे यैस्त्रुटिसंज्ञकास्तु ते-
ऽपरे बभूवुः खलु पङ्क्तिपावनाः ।।४।।

गाथाः

शिवे तुभ्यं नमोऽस्माकं शिशूनामादिमात्रे स्यात् ।
विमुक्तिर्बन्धनाद्यस्याः कृते लभ्या सुखेनैव ॥१॥

नमामस्त्वां विशालाक्षि प्रशान्तां चन्द्रिकाशोभाम् ।
निरस्यन्तीं तमोलोकात् प्रभाभिर्वेदवाग्रूपाम् ॥२॥

यदा मूर्त्तिर्विशत्यन्तः शिवे ते सात्त्विकी रम्या ।
तदा संवित्परं श्लिष्यत्यधीरेवाङ्गना कान्तम् ॥३॥

न चन्द्रं चन्द्रचूडोऽपि प्रमेयं धारयेदेकम् ।
तवैवैकां कलां मूर्ध्नां सदासौ श्लाघते शंभुः ॥४॥

प्रवाहो नित्य एवायं प्रवृत्तः कर्मणामाद्ये ।
कटाक्षः प्रेषितो यावद्भवत्या नावति प्राणान् ॥५॥

न चन्द्रे शीतरश्मौ वा द्युनद्यां विष्णुपद्यां वा ।
तथा शान्तिं लभेतायं यथा त्वद्वक्त्रशोभायाम् ॥६॥

प्रमाणं प्राणदं मातः कटाक्षं ते समाश्रित्य ।
प्रवीणः पुष्कलं लोके चरन्त्येवाभयं मुक्ताः ॥७॥

भवे ते द्वन्द्वनिर्मुक्ता भवानि स्युर्जना नित्यम् ।
ददासि ज्ञानवद्येभ्यः सुविज्ञानं नराग्र्येभ्यः ॥८॥

प्रतीतिर्याजिनेष्वेषा सुदृष्टा देवतानां मे ।
न तां वै हापयन्ती त्वं कदाचिल्लक्ष्यसे देवि ॥९॥

त्वं पुष्पमस्युमेश स्वयमेवसौरभं च ।
उद्यानमिव जगत्त्वं कान्त्याप्यलं पिपर्षि ॥१०॥

मार्गे व्रजामि तस्मिन्यस्मिँस्त्वमेव बुद्धौ ।
माभूत्कदाचनापि प्रणयस्य नाश ईश ॥११॥

राजात्वमेव मेऽसि प्रभुरस्युमेश नित्यम् ।
तुभ्यं सदाशिवाय प्रणतोऽस्मि बालबुद्धिः ॥१२॥

करुणैव मेऽस्ति शरणं करुणामयी दृगेषा ।
ते सापराधमेनं पश्यन्नवा न जाने ॥१३॥

मत्तो लपामि नैषोऽसक्तोऽस्मि नाथ सत्यम् ।
वृत्तोरुधामनि त्वय्युक्तोपि जाड्यसेवी ॥१४॥

सायं शशाङ्कभासा तव दृष्टिरत्रधावति ।
प्रातर्न पद्ममित्रं जाने जहाति नाथ ॥१५॥

आकाशमप्यनन्तं धावँल्लभे न च त्वाम् ।
सरितां तटे तरङ्गे द्रुषु च स्तुतिं शृणोमि ॥१६॥

गङ्गाऽऽप्य नाथ सैषा त्वामन्यथैव भूता ।
त्यक्त्वान्यतश्च यान्ती मह्यं निदर्शनायैं ॥१७॥

मन्येऽक्रियोऽसि नाथ प्रणयं न यत्करोषि ।
सर्वत्र जग्मुषस्तेऽगम्यं पदं न वेद ॥१८॥

विद्यास्तवैव शम्भो शन्तायतः फलन्ति ।
प्रश्नस्तवाधिकारेऽविद्याः कथं किलैताः ॥१९॥

क्रीडा भवेदनिच्छोर्व्रीडा न मां जहाति ।
नीडालयं विहङ्गाः पीडालयं गृणन्ति ॥२०॥

जाताः परत्र याताः सहजा भजामि न त्वाम् ।
यास्यामि कुत्र दृष्ट्याऽदृष्ट्वैव सत्यमीश ॥२१॥

बाल्यं मम क्व यातं सहजा गताश्च कुत्र ।
सुखमत्र कस्य हेतोस्तुष्यामि केन नाथ ॥२२॥

अनुरूपमेव सर्वं मह्यं ददासि जाने।
खेदं ततो न चित्ते बिभृयां कथञ्चनापि ।।२३।।

बाल्यात्तवानुरागो मय्याविशन्महेश ।
परिणाममस्य पश्यन्संवर्द्धयस्व सैनम् ।।२४।।

रोदिम्यनाथकल्पो भृशमारटामि मूढः ।
गायन्नटन्हसँस्त्वां विकलं स्मराम्यनन्तम् ।।२५।।

देयस्तु सैष मह्यं प्रवरोवरो महेश।
तव पादपङ्कजे मे सततं मनोरमेत ।।२६।।

हतबुद्धिरस्वतन्त्रः परतन्त्रलङ्घनाथ ।
स्वातन्त्र्यदत्तचित्तः सोऽहं भवाभिमानी ।।२७।।

सुहृदां दुरन्तमार्गे सङ्गादिद्द्विषोऽपराद्धान्।
करवै न चैम्यपि स्वं कृतिमात्रतन्तुबद्धम् ।।२८।।

बाले सखित्वमस्मिँस्तव किं पुराणपूरुष।
अहमेव नानुमन्ये त्वत्तोऽवरत्वमात्मनि ।।२९।।

तव तत्प्रणामजातं स्मृतमत्र किं विमुग्धम्।
कुरुतेऽवशं न चैतत्प्रोन्मादयत्यवश्यम् ।।३०।।

कालं परीक्षमाणस्तव दत्ततालमेषः।
बालोऽभिनेतुमिच्छन्नालोचि किं गिरीश ।।३१।।

प्रकृतिर्ममातिचित्रा विधिवन्निषेधमेति ।
सिद्धापि साध्यगामिन्यलमुग्रतां विधत्ते ।।३२।।

गाथा ममात्मनीना भवते कथं न कथ्या।
रथ्यापथेन गामो स्वामो न मत्समक्षम् ।।३३।।

एतास्तवाम्बरस्य स्फुटलाञ्छनानि ताराः ।
सैनत्पिधाय देहे न मयोमया सुखीत्वम् ।।३४।।

शीतोष्णदुःखिसुखिता सहनेपि शक्तिरस्य ।
माभैर्मनो नितान्तं सङ्गं परित्यज त्वम् ।।३५।।

आत्मा ममैष नायं बत सोऽहमेव शम्भो ।
एतन्मनो मदीयं छलितेन खेलयेन्माम् ।।३६।।

षष्ठचर्थभेदमूलः सुखदुःखसङ्करोऽयम् ।
परिहार्यसंसरः स्यात्करुणानिधेः कृपातः ।।२७।।

परिणाममत्र पश्यन्द्वयताभिमानसेवी ।
तत्रापि किञ्चिदन्ते लोके न भेदभिन्नम् ।।२८।।

मत्त्वा प्रभोरवज्ञां हृदयं न संवृणोमि ।
प्रणिपातमात्रसेवी सदयं शृणुष्व नाथ ।।३९।।

एतन्मनोऽधिकारि स्वकृतेषु चञ्चलं मे ।
कृपया तवैव वश्यं भविता ह्यनङ्गशत्रो ।।४०।।

आनन्दहेतुरेका करुणामयी दृगेषा ।
विसिषिणोति नाथयन्तेऽप्यवशः स भाग्यशाली ।।४१।।

मत्यानया स्वयाहं न भवं तरीतुमर्हः ।
एनामनन्तधामन्परिपूरयाशु तत्त्वम् ।।४२।।

सत्त्वं न मय्यनन्तप्रभ लक्ष्यतेऽधुना यत् ।
प्रमितेऽपि तत्र युष्मद्दयया न खल्वसत्त्वम् ।।४३।।

मादृङ्न्मूढबुद्धिस्तव दासतानुगामी ।
कामीश तच्छ्रूयेयं प्रकृतिं परानुकामी ।।४४।।

अये जीवनलाभ माधव याहि मद्धृदयान्न हे ।
चञ्चलाया यच्छ्रियो वसतिस्त्वमेवविभो हरे ।।४५।।

विद्यया ह्यनवद्यया समलङ्कृतोऽस्यात्मापि मे ।
त्वां मतिः समुपास्य किञ्चिच्चिन्तयेन्न परावरे ।।४६।।

शक्त्यमेयगुणैरहेय त्वां सदा श्रुतयो गृणन्ति ।
सच्चिदानन्दैकघन शंभुं रसं के नो भजन्ति ।।४७।।

नारदोऽहिः शारदा स्कन्दो गणेशो गीष्पतिः ।
त्वाममी परिचीय वक्तुं पारयन्ति न संप्रति ।।४८।।

चन्द्रशीतल सूर्य्यखर हे पावकोष्ण भवन्तकम् ।
कथं जाने वियन्निर्मल शैलघन शंसद्द्रवम् ।।४९।।

वायुरायुर्जीवतां यत्तत्त्वमेव विलोक्यसे ।
आत्मना भूतात्मभावं धारयन्न न शोभसे ।।५०।।

सूर्य्यकोटिः कं प्रकाशं दर्शयेदपि भास्वती ।
चेन्न चेतनचन्द्रिका चित्ते कला तव भामती ।।५१।।

पुष्पकरण्डकम्

अहम्मतिर्मामयि जह्नुकन्ये
ह्यनीनशद्यत्खलु संसरामि ।
न प्रेमपात्रं स भवद्विधायाः
कथं भवेयं सुतवत्तु मातुः ।।१।।

यथाऽपराधान् विगणय्य माता
स्निह्यत्सुते रोषसमन्वितापि ।
एवं मयि स्निग्धदृशैव भाव्यं
भव्ये भवत्या गिरिशस्य पत्न्या ।।२।।

त्वां चन्द्रभासं विनिरीक्ष्य चक्षु-
र्लोकस्य सन्तोषयतीव चित्तम् ।
न चित्रमत्रेश्वरि धूर्ज्जटेर्यज्-
जटामरुक्षः खलु वर्षपूगान् ॥३॥

त्वदीयकीर्त्या विदिशो दिशश्च
व्याप्ता ददुः कश्चन नावकाशम् ।
यतस्ततस्त्वद्गुणकीर्तिलुब्धै-
र्बुधैर्हरेरेव समर्च्चितोऽङ्घ्रिः ॥४॥

नखाग्रकान्त्या यदि माधवस्य
प्रतार्य्य मुग्धे तुलिताऽसि धूर्तैः ।
न तु क्षतिं कामपि तेऽत्वलोके
लोकोत्तरां कीर्तिमवाप्नुवत्याः ॥५॥

कमण्डलोर्वारि यदासि धातु-
र्विष्णोर्नखाग्रद्युतिरप्रमेया ।
शिवस्य मौलिस्रगुतानघस्य
क्षतिर्न कीर्तेस्तव लेशतोऽपि ॥६॥

नित्यैव कीर्तिः परमात्मनस्त्वं
वाग्बुद्धिधारेव चकासि तस्य ।
कमण्डलौ वा प्रपदेऽथ मौलौ
सर्वत्र सैका त्वमिहानवद्ये ॥७॥

चन्द्रार्धचूडस्य महेश्वरस्य
स्मरन्ति पत्नीमिह केचन त्वाम् ।
पिता स मे मातृपदे तथा ।त्वं
पदे पदे चेतय दण्डयन्ती ॥८॥

तदेन्द्रजालं विहतं सुयोगा-
द्द्वयोर्यदैक्यं प्रिययोस्तु साम्ना ।
एवं भवत्याः परिवारवृन्दे
स्निह्येन्मनो मे स्तुतभेदहानौ ॥९॥

कल्लोलबाहुः परिरम्भलोभात्
समुच्छलन्ती सखा सखीं स्वाम् ।
धावस्यनङ्गारिशिरोविभूषे
स्नेहस्य काष्ठा खलु सा मता मे ॥१०॥

रथ्याप्रवाहानपि सङ्गलेशात्
पुनासि गङ्गे महिमा तवायम् ।
स्नायादपस्ते बत कः समग्रा
यः स्यान्महात्मापि नहि त्रिनेत्रः ॥११॥

हृते श्रुती देववरस्य कच्चित्
तवारवेणानुपमेन दिव्ये ।
यतो ह्ययं वत्सलताविरक्तो
न मां शृणोतीश्वरताभिमानात् ॥१२॥

रजस्तमोलेशविवर्जितासु
श्रियोल्लसन्तीष्विह देवतासु ।
ऐश्वर्य्यमूर्तिः परतो विभक्ता
सत्त्वात्मिका शुद्धगुणा त्वमेव ॥१३॥

घ्राणः समाहृत्य विरुन्धतो यान्
व्यवाकिरो वारिकणान्विदिक्षु ।
वितानवद्व्योम्नि विभान्ति ये वा
तत्सेवयाऽयं पवनः सुगन्धिः ॥१४॥

कितवलीला

शिव त्वदीयाङ्घ्रिविलग्नचित्तं
मामुद्धरात्मीयकटाक्षसङ्घात् ।
न यं विना कोऽपि विलोकयेन्मां
लोकस्य येनैव सदुत्सवश्च ॥१॥

निर्बुद्धिरेषोऽस्मि विवेकहीनो
न लोकये यः खलु जीवनं स्वम् ।
एकैव बुद्धिस्त्विह मे प्रशस्या
त्वत्संश्रयं या मनुतेऽर्थहेतुम् ॥२॥

यत्त्वादृशस्त्वं करुणार्णवेन्दो
चकास्स्यनन्ताघविनाशहेतुः ।
तन्मादृशोऽहं शरणर्थिताम-
प्यवेत्य सर्वाघनिदानमस्मि ॥३॥

न मेऽपराधान्गणयेः प्रभो त्वं
शिशोस्त्वदीयस्य तवाङ्कगस्य ।
ब्रवीमि किं वा करुणार्णवे तान्
निमज्जमानान्न दृशाऽवलोके ॥४॥

चाटूनि

चण्डि त्वन्मुखचन्द्रेण चूर्णितांशौ निशाकरे ।
चकोरी चञ्चुचापल्यं नाधुना मुहुरश्नुते ॥१॥

दिवाऽपि सौरान्किरणान्न्यक्कुर्वत्प्रभयाञ्चितम् ।
त्वन्मुखं चन्द्रमालोच्य कमलं वारि शिश्रिये ॥२॥

तन्वि स्तनाभ्यामाश्लेषं प्राप्नुयात्ते पुरन्दरः ।
स्वःकुम्भिकुम्भाभोगाभ्यामधीरः स्पृहयीत नो ॥३॥

जाने सुन्दरि कन्दर्पस्त्वया जेता जगत्त्रयीम् ।
ऊरुभ्यां विजिते रम्भे जाड्यातिशयखेदिते ।।४।।

मुधा मृगयते कान्ते वसन्ते कोकिलां सतीम् ।
जनः श्रुतत्वदालापां त्वं न चैतद्विबुध्यसे ।।५।।

मौधोत्सङ्गे निरातङ्के स्वोदयाद्रिशिरः श्रियि ।
कान्ते पूर्णशरच्चन्द्रस्त्वन्मुखं च समं बभौ ।।६।।

हारस्तरलताराक्षि त्रस्तहारिणशावके ।
लुठँस्त्वत्स्तनशृङ्गाभ्यां गङ्गामप्याजुहूषति ।।७।।

विम्बोष्ठि त्वन्मुखाच्चन्द्रः शोभामादातुमुद्यतः ।
करे मृणालतन्त्वाभे सुधाशुक्त्योज्जगाम ह ।।८।।

मुखेन चन्द्रं तनुना मृगेन्द्रं
स्वःकुम्भिकुम्भावपि सुस्तनाभ्याम् ।
गतेन हंसीं वचनेन वाणीं
तनोषि हे सुन्दरि दूरदूरे ।।९।।

धम्मिल्लशोभां तव कोऽपि बर्ही
वीक्ष्य स्फुरच्चारुरुचाऽद्वितीयाम् ।
देवं सदाऽमुं वृणुते प्रभुत्वे
न यस्य नामापि परिग्रहस्य ।।१०।।

अनङ्गवीरो विभयोऽद्य बाले
मुखावतीर्णः खलु कामिरङ्गे ।
बाहू मृणाले मुखमिन्दुबिम्बं
पद्मे दृशौ त्वं रतिरेव साक्षात् ।।११।।

चन्द्रं चकोरस्तव वक्त्रबिम्बं
पिबाम्यहं तर्षरसादतृप्तः ।
अभूतपूर्वं शृणुमोऽद्य बाले
सिंहं समाक्रम्य करी चकास्ति ॥१२॥

आज्ञाय कुम्भौ स्तनमण्डले ते
लक्ष्मीः स्वमङ्गं दिवि कुम्भिकुम्भैः ।
विनोदयन्त्युत्पललोलहस्ता
संसिच्यमानेव हि जोषमास्ते ॥१३॥

शिरोरुहैर्नीलनभोऽनुकूलै-
र्मुखेन चन्द्रेण सुधामयेन ।
विभ्राजसे शुक्लपटावृताङ्गी
त्वं चन्द्रिकामध्यगतेव चान्द्री ॥१४॥

सुतनु किमिति चित्रं यच्चकोरी तवाऽऽस्ये
नयनयुगलरश्मीनर्पयत्युत्सुकेव ।
अयि तव मुखबिम्बं पश्यतां कामुकानां
मनसि नहि विधत्ते संमदं पूर्णचन्द्रः ॥१५॥

विकचकमलनेत्रे मालतीमालिकाया
अपि मृदुलमिवाङ्गं ग्लानिमीयादिदन्ते ।
क्षणविरहिजनोत्कस्वान्तभस्माङ्ककान्तं
नयननयनरश्मीञ्छीतरश्मिं प्रिये मे ॥१६॥

वक्त्रं दर्शय चारुबिम्बमधरं न म्लापय श्वासकै-
र्नेत्रे लम्भय जीवितेश्वरि मनाङ्मामप्यहं त्वत्प्रिये ।
बाहू अर्पय कामपाशसदृशौ रोषोऽस्ति चेत्ते मयि
प्राक्सूक्ष्मैर्नखरैर्विदारय परं श्रव्यां गिरं श्रावय ॥१७॥

गुरुकालिदासः

यदि वैदुषी कविषु साऽपि दृश्यते
न दिवं गताऽपि विरला सुशब्दता ।
गुरुकालिदासमधुवाङ्मयादृते
ननु कामनीयकमिहास्ति नैव नः ॥१॥

सुरभारतीप्रणयिनीवधूवरः
कवितावने नवमृगेन्द्रसुन्दरः ।
कविनाऽऽदिना समुपयन्परां तुलां
न गुरूयतां स रघुवंशकृन्न नः ॥२॥

प्रथमं दधे चरणमम्बुजासने
तदन्तरं समवतीर्य भूतले ।
उररीचकार कविपुङ्गवावृषी
ननु कालिदासऋषिरेव तेन नः ॥३॥

शिशवः सुगीतपरिगानसंमताः
गुरवोऽयि यत्त्वयि परां दधुर्दृशम् ।
कविरर्थकौशलकलैककारणं
हृदयेऽद्भुतानि जनयस्यतो हि नः ॥४॥

अयि कालिदास कृतिरद्भुता तव
श्रुतिमागता न खलु लोकिताऽऽकृतिः ।
कमलासनेन यदि सा समा भवे-
च्चतुरानना न चतुरानानना कथम् ॥५॥

कविकैरवेन्दुसुखमाप्य क कवि-
र्न भवन्तमर्च्चति बुधोपमं बुधः ।
सवितारमागतमुषस्यनम्बुजं
न सरो जुगुञ्ज यदि तन्न नस्त्रपा ॥६॥

तव भारती नवसुधामयाक्षरा-
ण्यथ लेखनी वमति नूतनां लिपिम् ।
मतितूलिकोद्धरति चित्रमद्भुतं
न मनोहरोऽसि कथया शुकेन नः ॥७॥

रसमाधुरीधुरमवेक्ष्य कः सुखी
रसिको वधूवदनचुम्बनं स्मरेत् ।
तव भारती ललितवर्णचिन्तया-
प्यधरीचकार विषयान्तराण्यहो ॥८॥

ननु चित्रमत्र न कवेऽस्ति किञ्चन
स्वकृतेन रञ्जयसि चेन्मनांसि नः ।
त्रिजगन्मनांसि मुकुराकृतौ त्वयि
प्रतिबिम्बतानि कुसुमायुधास्त्रवत् ॥९॥

कवितास्तु चेत्सुरकुमारिकाक्षिता-
वुदयन्तु नाम कवयोऽनपत्रपम् ।
गुरुकालिदासचरणौ विदन्तु ते
क्षितिपालमौलिमिव सेविनोऽपरे ॥१०॥

कोजागरः

कोजागरायां परितः प्रकीर्णा
दीपावली भाति यथा रमायाः ।
क्षीराम्बुधेरागमने वितीर्णा
जनैः प्रहर्षाद्बलिपुष्पमाला ॥१॥

कोजागरायाङ्कमलेप्सिता भूः
हसत्यहो दीपकलामलाङ्गी ।
दिवं विना श्रीमुखचन्द्रशोभां
ताराप्रसूनैरपि नातिभासम् ॥२॥

दीपावलीभिर्गृहराजयोऽमू-
विभान्ति लक्ष्म्यागमनं निशम्य ।
बिभ्रद्भिराशूत्कलिकाकुलत्वं
चन्द्रस्य पुत्रैरिव भूषिताङ्ग्यः ॥३॥

यन्त्राणि

कटाहमापूर्य्य जलेन सम्यग्
बह्न्युत्थितैर्वाष्पगणैर्निरुद्धैः ।
सञ्चालयन्तः परयन्त्रमेके
धावन्ति मार्गं शकटेन शीघ्रम् ॥१॥

चित्राण्यनेकान्युचितानि कृत्वा
तूर्णातितूर्णं पुरतो नयन्तः ।
क्रमेण तेषां च पिधाय पूर्वा-
ण्येकां क्रियामाशु निदर्शयन्ति ॥२॥

शब्देन सुव्योमभवेन लेखां
कृत्वा पुनस्तां प्रतिशब्दधात्रीम् ।
सूच्या विनिर्मृज्य विशेषपत्त्रे
गायन्ति यन्त्रेण नचाद्भुतं नः ॥३॥

संचार्य लौहेषु विशेषशक्ती-
र्दुष्प्रापकल्पा अपि युक्तिमन्तः ।
यन्त्रैरनेकैर्विवदन्ति दूरा-
च्छृण्वन्ति गायन्ति हसन्ति चापि ॥४॥

योगाग्निरस्यापि तु पञ्चभूत-
शक्त्यैव केचिज्जगतां परान्तात् ।
स्वार्थाननेकान्परिसाधयन्तः
स्वबुद्धिमत्तामपि दर्शयन्ति ॥५॥

धातुक्रियाकौशलनिर्मितेन
यन्त्रेण घटचा दशयोजनानाम् ।
व्योमन्यनन्ते बहुधोड्डयन्तो
न नः परे शिल्पिवरा न विज्ञाः ॥६॥

कमलाहारः

क्षीरोदक्षालिताङ्गोऽपि क्षणमभ्रे निलीयते ।
त्वद्वक्त्रसौन्दर्यकृते कलङ्की लक्ष्मि चन्द्रमाः ॥१॥

कृष्णारक्तार्जुनाः कर्णभूषणेन कृपायुताः ।
कमले भारतायन्ते कटाक्षाः सरसास्तव ॥२॥

कल्पवृक्षो धनाध्यक्षश्चिन्तामणिरिति त्रयः ।
चतुर्थी कामदोग्ध्री वा त्वं रमे त्वमिवासि मे ॥३॥

कुड्मलनिभकुचयुगले
करतुलितसुललितपल्लवोल्लासाम् ।
लक्ष्मि त्वं कल्पलतां
कल्पलता त्वां विनिर्जयत्यधुना ॥४॥

कमले त्वत्कटाक्षाभस्
त्वत्तुल्या कौस्तुभप्रभाम् ।
अमन्यततमां कृष्णः
प्रियां हृदयहारिणीम् ॥५॥

देवतानां शिरोरत्नं त्वं त्वत्तुल्या न मे रमे।
अर्थसाहाय्यदानाय चकास्त्यन्या सरस्वती ॥६॥

निशाकराकारहृतान्तरात्मा
लक्ष्मीः करे दर्पणमादधाना।
कराब्जशोभापरिभावुकं किं
निरीक्षसे चन्द्रमुतात्मबिम्बम् ॥७॥

न कौस्तुभेनापि न चन्द्रमुख्यै-
स्त्वयैकया लक्ष्मि पवित्रितोऽब्धिः।
कृपाकटाक्षामृतपूरभङ्गे
चिन्तामणीनां निकरस्त्वदीये ॥८॥

प्रत्येति कस्त्वां गरुडध्वजस्य
पत्नीति नो धावसि वत्सला चेत्।
दिशो दशाशाविहतान्नराग्र्या-
नुद्धर्तुमेकाऽपि जगत्परान्तात् ॥९॥

का ते स्तुतिर्वाग्विषयश्चकास्तु
त्वं व्यापिका व्याप्नुष एव चित्तम्।
न चेत्कृपा ते कविरर्थहीनः
कैर्वा पदैस्त्वामनुकूलयीत ॥१०॥

क्षत्त्रत्राणकरस्य रामधरणीराजस्य वामाङ्गिनी
शर्म प्राणमयीसुवर्णधवलां कान्ति दधानाऽनुजाम्।
वन्द्या देवमनुष्यजैः सधनतां संप्राप्तुकामैरसात्
सा लक्ष्मीः क्षणदेशबन्धुवदनानीराङ्गजासद्रसा ॥११॥

(चक्रबन्धः)

सा लक्ष्मीः क्षीणपापानां शर्मणे स्यान्नृणां सदा ।
या लब्धा क्षीरपानानां वर्मवत्स्यान्नृणां हृदा ॥१२॥
(गोमूत्रिकाबन्धः)

तारं काराभयं जेतुं चेतुं चन्द्रोज्ज्वलं यशः ।
हारं दारानयं नेतुं सेतुं चन्द्रोज्ज्वलं यशः ॥१३॥
(यमकगोमूत्रिके)

पद्माहारः

विष्णोर्या वैजयन्तीमुरसि विकसितां ह्रेपयत्युत्पलाक्षी
वक्षोजाभ्यां दृढाभ्यामपि हृदयगतं गाढमापीड्य भान्ती ।
यत्कान्त्योल्लोपितांशुं स्मरति न भगवान्कौस्तुभं स्वं बिभर्तुं
हारः कण्ठ्योऽयमन्यः प्रभवतु भवतां भूतये तस्य लक्ष्मीः ॥१॥

कचत्कनककान्तिभिः कृतसुमेरुदानायतिं
ह्यपाङ्गविसरैर्हृतामरनदीतरङ्गायिताम् ।
स्मितैरनुजनं परामृतमहाब्धिमाकुर्वतीं
श्रये श्रियमहं सदा शरणदां श्रियायाश्रवः ॥२॥

मुखेन्दुलसितास्मितातुलविभामहाचन्द्रिका-
निमग्नजनमञ्जसा पितरि मज्जयन्ती मिव ।
अपाङ्गवलनैरथामृततरङ्गिणीगङ्गया
चिरेण परिषिञ्चतीं भजककिङ्करं शङ्करम् ॥३॥

श्रीशरयूस्तुतिः

मातः शरय्वतिशयः खलु कस्तवायं
त्रैलोक्यगीतमहिमा सरितामलभ्यः ।
यज्जाह्नवीं स्वचरणोदकतो विभज्य
प्राग्विष्णुरेव धरणीमवतीर्णवाँस्ते ॥१॥

रामः परात्परतरः परमो ह विष्णुः
क्रीडँस्तवैषु पुलिनेषु सुखेन रेमे ।
त्वय्यभ्यषिञ्चदमलं निजदिव्यदेहं
त्वद्वारिषु प्रणतिमान्स्वमपि प्रदध्यौ ।।२।।

कौशल्ययेव जलतां प्रियतातिरेकात्
संप्राप्तया शिशुरयं त्वयकाऽपि मातः ।
रामो मनोहरवपुः कलरावलोल-
माश्लेष्यचुम्बि समदर्शिपराञ्च्यसिञ्चि ।।३।।

कर्पूरकुङ्कुमसुचन्दनपङ्कसान्द्र-
स्वर्णाब्जभासितजले श्रितचक्रवाके ।
मातस्त्वमेव भजतां प्रविधूय पाप-
मेका द्युसिन्धुमुदितोपहसस्यनंशा ।।४।।

साकेतभूर्विजयते बत रामचन्द्र-
पादाब्जरेणुरुचिरीकृतकायशोभा ।
मातः कथं न भवती भजनीयरूपा
प्रक्षाल्य तस्य वदनं शरदिन्दुकान्तम् ।।५।।

वाशिष्ठिगीरिव मनो हरसीह माता
रामाद्वयं परिनिवेद्य ममाभ्युपायैः ।
आप्लाव्यदेहमिदमात्मन उत्कचेता
मंस्यामि लब्धमिव साधु विमुक्तभावम् ।।६।।

कल्लोललोलभुजकम्पनकैः सुफेन-
हासैस्तटाश्रितपतत्रिकलारवैर्माम् ।
आहूय रामचरणौ बत दर्शयन्ती
मातः कदा खलु भविष्यसि चिन्तयामि ।।७।।

नेतोऽधिकं जननि मे त्वदपाङ्गकोण-
लभ्यं यदङ्ग परिनिर्णुद भेदभावम् ।
संसारबन्धमखिलं व्यवधूय यस्मा-
दानन्दसिन्धुसुहितः स्वतपा भवेयम् ।।८।।

श्रीकान्तकाव्यं सरयूस्तुतिर्यः पठेत्पुमानार्जवशालिचित्तः ।
ध्रुवं स यायात्पदवीं विमुक्तेरभेदमाप्यैव विभोः खरारेः ।।९।।

मुमुक्षुविचारः

मुमेर्वंवच्छिन्नतयास्तु गम्यं यद्ब्रह्मलोष्टे कथमित्युदूहः ।
वेदान्तिभिर्न्यायमतानुगुण्याद्बिन्दौ समुद्रस्य लयेन तीर्णः ।।१।।

न कल्पितांशे तदकल्पकस्य संभावना वस्तुगते विरुद्धा ।
न कल्पितांशेतदकल्पकस्य संभावना वस्तुगते विरुद्धा ।।२।।

एषोऽणिमैवं महिमा कथन्नो भिन्नं कथं वा न यदा ह्यभिन्नम् ।
द्वैतं यथैवैकविशिष्टबुद्धावद्वैतमेवं विविधोपजम्भे ।।३।।

यथा निरंशान्न परस्त्वणुः स्यात्तथैव तस्मान्महानन्तात् ।
अतोनुमन्ये यदि नामहेतोर्जीवद्विमुक्ताअपि तेन तुल्याः ।।४।।

अनादिरेषोऽस्य ततः प्रपञ्चो बोधाद्विलीयेत भवेच्च सान्तः ।
निर्लेप सत्यत्रकथन्त्वनन्ते तस्यास्तु सत्ता ह्यपि वर्तमाने ।।५।।

स्वाभाविकाज्ञानमिदं न जीवस्तर्तुं समर्थोहि विना प्रबोधात् ।
ब्रह्मैव सोऽयं भविता पुनर्यन्मोक्षोनिषिद्धान्न परः प्रपञ्चात् ।।६।।

अध्यासमूलं न ततोऽसतीयं बोधाद्विलीना न ततः सतीयम् ।
सतोऽतिरिक्तं न वसेन्निवासं तथा ह्यविद्यैव निरुक्तिहीना ।।७।।

सतः परिच्छेदकरी यथेयं तस्मिन्विभासेत तथेति नेयम् ।
मेया कथं नाप्यनयैव मेयं ददातिकालेन पुनः प्रमेयम् ॥८॥

ज्ञानात्पृथग्भाति यदा विवर्तस्तदैव तस्मिन्नु चितोऽवभासः ।
ज्ञानात्पृथग्भाति यदा विवर्तस्तदैव तस्मिन्नु चितोऽवभासः ॥९॥

न स्वप्रकाशात्परमस्ति किञ्चित न स्वप्रकाशात्परमस्ति किञ्चित् ।
मृषा न भेदाश्रयमस्ति किञ्चित् मृषा न भेदाश्रयमस्ति किञ्चित् ॥१०॥

अनन्तशक्तेरमितस्य यस्य निर्वाच्यताशून्यमुपेयरूपम् ।
भासेत सत्यं हृदिसन्निविष्टं यस्यानुकम्पा कृतमेव शुद्धे ॥११॥

वनमाला

श्रीमँस्त्वद्दर्शनादेव प्रणष्टं बहलं तमः ।
विनिर्धूतं रजश्चैतद्विवृद्धं सत्त्वमेव तु ॥१॥

जीवस्याज्ञानमग्नस्य दुःखाम्भोधिं तितीर्षतः ।
विज्ञानकरदानेन तारणं कुरु माधव ॥२॥

अज्ञानपङ्कमग्नानां मद्गवीनां रमापते ।
करुणां तरणिं कृत्वा समुद्धारं करोषि चेत् ॥३॥

कारङ्कारमहङ्कारं विनश्यत्यल्पचेतनः ।
तस्योद्धारस्तु देवेश त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभात् ॥४॥

यच्छायां चिन्तयित्वापि प्राकाम्यं लभते जनः ।
चित्रकल्पद्रवे तस्मै तुभ्यं प्राणान्समर्पये ॥५॥

स्तन्यान्नाद्युत्कटाकाङ्क्षा स्वभ्यासात्संप्रवर्त्यते ।
बालेष्विति जगन्नाथ न वृत्तिस्तेषु मे भवेत् ॥६॥

प्रेयानात्मा स्वतो यस्मात्सत्वं यस्माच्च माधव ।
स्नेहं कस्मै कथं ब्रूयां कस्माद्धेतोस्तथा विभो ॥७॥

सुकृतं कल्पनातीतं कल्पकोटिधृतं तु यत् ।
त्वद्दर्शने परप्रीत्या तत्सपुण्यस्य व्यज्यते ।।८।।

चन्द्रालोकेऽखिलं नष्टं यथा सन्दृश्यते तमः ।
तथा त्वद्वक्त्रचन्द्रस्य पुरतस्तन्न दृश्यते ।।९।।

कामं सूर्य्यो ह्यु देतिस्म दिशो विदलयन्करैः ।
स्मृत्यापि तु तमोधुन्वन् शतं तस्य तिरस्कुरु ।।१०।।

असंभवाधिकारेण प्रेरितो लघुचेतसा ।
संभावितं भवन्तं भो भावये मधुसूदन ।।११।।

न मे पुण्यं समुद्धर्तुं प्रभो त्वद्विमुखात्मनः ।
स्वजनं करुणादृष्ट्या पुनीषे चेन्न तेन किम् ।।१२।।

कामये करुणासिन्धो दर्शनं गौरवान्न ते ।
पथप्रदर्शकत्वात्तन्मन्यते मुनिभिर्य्यतः ।।१३।।

न तु पुण्यविपाको मे लक्ष्यते लेशतः क्वचित् ।
करुणामयते यस्मान्नानुकम्पा प्रतीयते ।।१४।।

संपूर्णचन्द्रशोभाऽऽढ्यं प्रसन्नं त्वन्मुखाम्बुजम् ।
विलोकितवतो विष्णो न श्रेयः क्षणदूरगम् ।।१५।।

प्रम्लायन्तो पुष्पकान्तिश्चन्द्रिकाजाड्यकल्मषा ।
नाथ त्वन्मन्दहसितेनोपमालक्षिता क्वचित् ।।१६।।

तापसावादिपुरुषौ नरनारायणावृषी ।
उपासमानौ श्रीमन्तं विजयेतां महाबलौ ।।१७।।

धनुर्बाणधरौ साक्षात्तवैवांशौ परात्मनः ।
कृष्णौ श्रियातिशायिन्या भासमानौ परन्तपौ ।।१८।।

कुबेरोद्भवसँय्योगान्नारदाद्यभिसंस्तुतः ।
महाराजाधिराजस्त्वं विभास्युत्तमपूरुष ॥१९॥

यत्क्षुरान्तं सहस्रारं चक्रं त्वत्करसंस्थितम् ।
तत्प्रभातन्तु संपर्क्काज्जगच्चक्रं विवर्त्तते ॥२०॥

यद्यत्त्वत्करपद्मेषु शङ्खचक्रादि लक्षणम् ।
तच्छायास्पृष्टमात्रेण चक्रवर्त्ती जनो भवेत् ॥२१॥

यदि त्वमरविन्दाक्ष प्रेमपीयूषहारितः ।
मायया नाम मोहिन्या किमन्यत्कृतवानसि ॥२२॥

यथा ऋजुरहं नाथ तथा मय्याचरेद्भवान् ।
निष्कल्मषा चित्तवृत्तिः कृपयैव हि भाविनी ॥२३॥

असारे दुःखबहुले संसारे मित्रवर्ज्जिते ।
भावत्कसत्ता भव्यानां भूतानां भावकारणम् ॥२४॥

कल्याणी मतिरस्येयं या त्वामेवमुपाश्रिता ।
एकान्तनाथमेकान्तं चन्द्रचन्दनशीतलम् ॥२५॥

भ्राम्यन्ती जगदुत्सङ्गे रङ्गे पितुरनुज्ञया ।
स्वयंवरेण वव्रे त्वां कुमारीव मतिर्मम ॥२६॥

भक्तिमात्मगुणं प्राहुर्ये केचित्तत्त्वदर्शिनः ।
तेषां मतेऽनुकम्पा ते न किञ्चिद्दातुमर्हति ॥२७॥

सुखमीप्सन्नरस्त्वत्तो न भक्तिं वरिता कथम् ।
प्रददाति यतः किञ्चिन्न तस्याः परतो भवान् ॥२८॥

गृह्णाति क्षेप्तुमालोच्य क्षिप्तं रोदिति सुस्वरम् ।
पश्यत्यावर्त्य सस्नेहं बालः क्रीडनकं यथा ॥२९॥

तथैवात्मा त्वदर्थं मे लीलाः प्रकुरुते हिताः ।
याः स्मृताः शैशवं व्यक्तं दर्शयन्ति पुरस्कृतम् ।।३०।।

मतिः कष्टमवाप्यैषा श्रीमन्तं श्रयते सदा ।
कान्ता कान्तारमासाद्य कान्तमेकं हि वीक्षते ।।३१।।

वसन्तमाश्रमे स्निग्धे सन्तमुत्कृष्टमालिनम् ।
कमलाकोमलालापहृतचित्तं नुमः प्रभुम् ।।३२।।

नमस्यामः श्रियं दृष्ट्वावरुद्धां बनमालया ।
कौस्तुभभ्राजितोरस्कं केशवं केशिनाशनम् ।।३३।।

नारदं ज्ञानिनां मुख्यं गरुडं च महाबलम् ।
स्मरतां वर्द्धतां बुद्धिर्वीर्य्यं च मधुसूदन ।।३४।।

नारदाद्यैर्यथैश्वर्य्यं पार्षदैरभिसंस्तुते ।
विलोक्यते त्वयीशान न महेन्द्रे तथा पुनः ।।३५।।

भगवन्भक्तवात्सल्यं तव लोकेषु विश्रुतम् ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यथेष्टं हृदयेचर ।।३६।।

दुष्कृतैः सुकृतोत्सिक्तैर्हृदयं नाम लभ्यते ।
तत्कुतो नु प्रदेयं स्याद्भगवन्भवते मया ।।३७।।

सुखाय दुःखाय च यज्जीवस्यानन्दवर्धन ।
कृत्वातद्धृदयं हस्ते क्रीडिष्यसि यथासुखम् ।।३८।।

क्वायमात्मा ममानीशः प्रभवे सुखदुःखयोः ।
क्व वा तव प्रभुस्त्वस्य परेषां चापि सुव्रत ।।३९।।

चित्रं ज्ञप्यमिदं नाथ त्वां वशीकुर्वता मया ।
भक्तियोगाद्युपायैस्तु स्वात्मैव स्याद्वशीकृतः ।।४०।।

आधाताऽऽधेयमाधारः कर्मणामाहितात्मनाम् ।
त्वमेव विश्वं विश्वात्मन्रक्षसे दक्षशोभनः ।।४१।।

आदेशान्तमभिप्रेक्ष्य प्रेष्ठं श्रैष्ठ्यात्तरस्विनी ।
आकल्पावसितेरेषा वर्तते मोहिनी हि माम् ।।४२।।

परस्मिन्पुरुषे लुब्धां को नु वेद न हि श्रियम् ।
तवेति तान्निगृह्णीष्व न मां मोहितुमर्हसि ।।४३।।

हृदयं भिन्धि विच्छिन्धि कृन्त वा लवशः शतम् ।
प्रविशात्र दयासिन्धो यथा चीनांशुके जलम् ।।४४।।

अकुण्ठा येन ते शक्तिः प्रस्तरप्रविलापने ।
तेन त्वामर्थये नाथं मनसो द्रुतिहेतवे ।।४५।।

यः पञ्चेन्द्रियशीर्षेभ्यो विषं वमति दोषवत् ।
मनोमहाहिः कस्यासौ निर्ग्राह्यः स्वल्पवर्च्चसः ।।४६।।

निमील्य नेत्रे लोकोयं व्यञ्जनं स्वदते यथा ।
नेन्द्रियाण्यसमाहृत्य तथा त्वां द्रष्टुमर्हति ।।४७।।

त्वामलब्ध्वापि लोकेश ज्वलितं ज्ञानदीपकम् ।
नेन्द्रियाणां पतङ्गानां जायते मोदसन्ततिः ।।४८।।

इन्द्रियाणां समाहारस्त्वमेव ज्ञानदीपक ।
विलयं यान्ति कर्माणि तान्यपीह यतस्त्वयि ।।४९।।

मनोमहाहिं योगेन्द्र व्यामोह्य स्ववशे कुरु ।
विषमुद्वान्तमेतेन त्रैलोक्यं नाशयिष्यति ।।५०।।

प्रभाविलिप्तमाकाशं भक्तिलिप्तं मनो मम ।
निर्लेपस्य तवालोकात्कल्पनातीतशैशवम् ।।५१।।

भूतानां तर्क्कगम्यानामन्तरा विशते भवान् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं रूपं कतमत्तव विद्यते ॥५२॥

अनन्तेनादिहीनेन चिद्रूपाभासकेन च ।
सत्तामात्रेण देवेन व्याप्तं चिदचिदात्मकम् ॥५३॥

सुधियोऽपि विना श्रीमन्प्रसादं तव माधव ।
कोहं क्व वा कुतस्त्यो वा नात्र चिन्ता प्रजायते ॥५४॥

चिन्त्यमानोऽपि चित्तेऽस्मिन्नपदं सन्दधासि मे ।
कृष्णकृष्टे सदश्वैः स्वैरिन्द्रियैर्विषयान्तरम् ॥५५॥

ब्रह्म यद्ध्येयमेकान्ते नाम नीरूपमेव तत् ।
मनसाऽपि कथं लभ्यं मादृशेन रमापते ॥५६॥

अग्राह्यं मनसो यच्च मनः प्रेरयते विभुः ।
तत्र मेऽस्तु कथं प्रज्ञा वद विज्ञाय मेऽज्ञताम् ॥५६॥

राधानेत्रान्तपाशेन सुबुद्धं त्वां हरन्ति ये ।
भक्त्या भक्ताः सुधीनेत्राः कृष्ण तेभ्यो नतिर्मम ॥५८॥

त्वद्वक्त्रचन्द्रिकापानं चकोरीव करोति या ।
सदैव राधा निर्बाधं सा मे दुःखं प्रबाधताम् ॥५९॥

त्वत्कीर्तिकौमुदीनद्यां स्नान्ति येऽत्र जगन्ति ते ।
विजयन्ते जनास्तेन त्वमात्मानो जनार्द्दन ॥६०॥

जायन्ते नलिनीनेत्रास्तथा चक्राङ्कपाणयः ।
परन्तु पुण्डरीकाक्ष त्वच्छायाच्छलिता अमी ॥६१॥

छलकल्पलतास्वर्गे कल्पद्रुस्त्वमितोभवान् ।
भवतः कृपया लोके प्राप्नुवन्त्यखिलं फलम् ॥६२॥

श्यामा प्रभा भासयते जगत्तें
चित्रं समग्रं किमतो विचित्रम् ।
गुणैरनेकैस्त्रिगुणीं विजित्या-
प्येकस्त्रयीरूपमहो बिभर्षि ।।६३।।

पटादिकं भिन्नधियैव दृश्यं
जनाय यस्मै दयसे तु तस्य ।
व्याप्याश्नुवानोऽखिलमेव लोकं
न चिन्तितुं किञ्चिदहो ददासि ।।६४।।

चेच्चारुमूर्त्तिर्विशतात्तवाद्धा
चित्ते मदीये करुणामयस्य ।
मायाविमुग्धोऽपि हरे न तस्याः
कार्य्येषु कश्चित्प्रतिवादमीहे ।।६५।।

योगीन्द्रवन्धप्रविकाशिताशा
मायासहस्रेषु परिस्फुरत्सु ।
माया तवैषास्ति जगत्पतेर्या-
न्नोल्लङ्घितुं कोऽपि जनः समर्थः ।।६६।।

विमोहितुं मां यतसे प्रभावात्
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं किमु चक्रपाणे ।
आदाय किं वा हृदयं मदीयं
प्रत्यर्पितुं वाञ्छसि भग्नसन्धः ।।६७।।

कृपां त्वदीयामवलम्ब्य सर्वो-
ऽश्रान्तं तपस्तप्यति योगिवर्गः ।
जनोऽवरोऽपि प्रणयं दधाति
प्रभा न तस्या विलयं प्रयातु ।।६८।।

एकां दयां धारय साधु विष्णो
विस्तारयैनामपि जन्तुवर्गे ।
कल्याणदस्त्वं बत धर्ममूर्ते
सञ्जीवयाश्वासय जीवलोकम् ।।६९।।

उत्थाय कल्ये निखिलोऽपि लोक-
स्त्वां संस्मरत्यम्बुजपत्रनेत्रम् ।
निःश्रेयसायाभ्युदयाय चैव
प्रावीण्यलाभार्थमथापि विष्णो ।।७०।।

नाहं हि मन्ये तव दर्शनेन
विवर्जितान्क्वापि जनान्सुभाग्यान् ।
अज्ञस्य जन्तोर्विवशस्य चक्षुः-
साफल्यमेकं तव रूपदृष्टिः ।।७१।।

जयन्ति के वा न जना जगत्या-
मुपार्जितानन्तगुणार्जवेन ।
त्वदीयसेवोचितचित्तवृत्ते-
स्तवैव मायामिह पूजयन्ति ।।७२।।

विच्छिद्यते नाम यतो न यावत्
कर्मप्रवाहस्सुखदुःखहेतुः ।
जहात्ययं नाम ततो न ताव-
ज्जीवोऽप्यहन्तां प्रकृतिं परां स्वाम् ।।७३।।

अर्थस्तु नेह प्रमयास्ति कश्चिद्
भ्रान्तिः सुखं चेदनघं ददातु ।
आस्वाद्यमानो वनितामुखाब्जं
स्वप्नं वरं संमनुते प्रबोधात् ।।७४।।

जाग्रत्प्रलीनान्तरसंविधाने
स्वप्नेऽपि संवित्सुखदु:खहेतु: ।
स्वाप्नं प्रपञ्चं त्वत एव केचित्
तथ्यं परं प्राहुरदीनसत्त्वा: ।।७५।।

दीनास्तु केचित्परिहारयन्तो
जाग्रत्प्रपञ्चं खलु तेन तुल्यम् ।
एकामनेकामिव भासमानां
श्रिता: समानामिह संविदं ते ।।७६।।

सर्वं प्रपञ्चं परिलोपयन्तो
संविच्चकास्तीश्वरताविकाशात् ।
अतथ्यभूते सकलेऽपि लोके
न तां विलोप्तुं खलु कश्चनेश: ।।७७।।

परत्वहानौ स्वमभूदभेद्यं
प्रामाण्यमस्यैवमतश्च सिद्धम् ।
स्वज्ञानसाम्येप्यथवा ह्यसाम्ये
दु:ख: सदैवास्ति परोऽवबोद्धुम् ।।७८।।

यस्त्वत्प्रसत्त्यै नयवित्सुधीत्वा-
न्मिथ्या न किंचिच्चरतीह लोके ।
नैय्यायिके केशव तत्र दृष्टा
नोद्दण्डवैतण्डिकताऽपि केन ।।७९।।

सर्वं मतं तस्य पुरा ह्यसिद्धं
किञ्चित्प्रतिज्ञाय स संचरेच्च ।
यदेव सिद्ध्येद्व्यवहारयोग्यं
मतं मतं तस्य तदेव येन ।।८०।।

सञ्चारशीलो व्यवहारसिद्धौ
सर्वोऽन्यथा तत्र चरेन्न पङ्गुः ।
न चोपपत्तिः खलु दृष्टसिद्धौ
कस्मिन्पदार्थे महतामपेक्ष्या ।।८१।।

तथा च तेनापि न केवलेन
कार्यं हि शुद्धव्यवहारकेण ।
यमेकमिष्टं न परेऽनुमन्तुं
सदा तथैवेति समुत्सहन्ते ।।८२।।

साध्यं प्रकल्प्य व्यवहारमेनं
यो वीक्षते सिद्धवदेव तस्य ।
यो वा बहिर्याति ततोऽभिवक्तुं
तुल्यस्तयोर्दोष इति प्रथा मे ।।८३।।

घटाद्यसत्स्यादनिरूपणात्कथं
कथं सतो वा न निरूपणं भवेत् ।
प्रमाऽप्रमा स्यादसती सतीत्वयुङ्
न चित्रमाक्रामति बुद्धिरत्र किम् ।।८४।।

सतः प्रतिष्ठात्वमुपेत्य गीयते
कथन्नु तत्स्यादसतस्तु तत्र वै ।
ततः परस्मिन्सदसद्विभिन्नतां
गते प्रपञ्चायितमागतं पुनः ।।८५।।

भिन्ना सती चाप्यसती च माया-
ऽभिन्नं तु तद्ब्रह्म सदेव नित्यम् ।
नियामकं नात्र परन्तु लोके
विना श्रुतिज्ञस्य परानुकम्पाम् ।।८६।।

सत्ता निषिध्येत विना प्रमाणं
न दुर्वचत्त्वं मुखदुर्वचत्वात् ।
अनिर्वचत्त्वं च न वस्त्वभावं
कुर्य्यात्कदाचित्खलु लौकिकानाम् ॥८७॥

माया निरूप्या न भवेत्कथं वा
कथं परं ब्रह्म भवेच्च बोद्धयम् ।
द्वयेऽपि नास्मिन्मम बुद्धिरेषा
विशुद्धमार्गं लभतेऽभियातुम् ॥८८॥

प्रामाण्यमन्त्यं यदि नात्मनः स्यात्
स्याद्वाप्यसत्ता यदि तत्र काचित् ।
तदाऽहमस्मिन्ननिगूढरूपे
प्रश्ने विदध्यां हृदयं स्वमेतत् ॥८९॥

विभो त्वमेवास्य विमुक्तशङ्कः
नाशे समर्थः खलु संशयस्य ।
ममापनायेन चरस्तु कश्चिद्
ततोऽहमेतं त्वयि सन्दधामि ॥९०॥

माया न कार्या पुनरत्र काचित्
त्वयेश्वरेणानुपमेन योग्या ।
ममारुचिस्तां द्विषतो बभूव
न यां विहन्तुं बत कोऽपि शक्तः ॥९१॥

प्रकीर्णश्लोकाः

येषाङ्गवाक्षान्तरनिर्गतानि
च्छायासुखानीन्दुमुखीमुखानि ।
आलोक्यतां यान्ति न तानि नूनं
सौधानि धावन्ति मनाङ्मनांसि ॥१॥

तथा निसर्गान्नलिनीदलायते
न चञ्चले ते नयने प्रकर्षतः।
मनांसि यूनां प्रहरन्ति योषितो
हृदानभिव्यक्ततरेण मे यथा ॥२॥

कुतर्क्कलेशेऽप्यपथे प्रवर्तिता
जितेन्द्रियस्याधरसावतारिणी।
गुरूपदेशेऽनवधानशालिनां
न काव्यवर्त्मन्यवधीयते मतिः ॥३॥

न तिग्मभानोरपि रश्मिभिः सखे
तुषारलीनैरुपरञ्जनोद्यतैः।
शरायतैर्युद्रुगवाक्षरोचकैः-
र्हिमे न्यषेध्यद्यपुरेव मन्मथः ॥४॥

न मां मुञ्चत्यन्तश्चरणकरचेलाञ्चलमुखे
विनीयाऽऽत्मीयां यां भ्रमयति विमुग्धामपि दृशम्।
तयैवं बुद्ध्वा त्वां कथयति मनो मे हररुषं
कथं वार्य्यो वीरः सखि तव वरो यो नवरसः ॥५॥

आलोच्य यामथि पुराणकवे कवीना-
मद्यापि नेच्छति कुलं न मनःप्रसत्तिम्।
तामात्मभूरपि नवां वनितामिवैनां
अन्यामनङ्गकवितां वितराशु मह्यम् ॥६॥

स्नेहेऽसति स्यात्तु दशावशेषो
दशावसाने न पुनःप्रकाशः।
स्नेहोऽवशेष्योऽथ दशावशेष्या-
प्युतो भयं नोत भवान् ब्रवीतु ॥७॥

मयापि फलमिष्यते सकलमत्र लोभोज्ज्वलं
कृतस्य खलु कर्मणो भवति नैव नाशः प्रभो ।
विना तव कृपामयीं तरिमिहास्य जन्तोर्बत
प्रकृष्टसुधियोऽप्ययं जलधिवद्भवो दुस्तरः ॥८॥

कविता वनिता न सुखाय भवे-
न्मम किं विदुषामपि विभ्रमणम् ।
जगदीश्वर एव हिताय मम
प्रणतस्य परासहनस्य मनः ॥९॥

मनोऽवबुध्यस्व ममापि रूपं
वाचस्पतेरप्यसुखावबोधम्
ज्ञानेन तस्मात्प्रविकाश्य चित्तं
मूर्द्धानमुद्भिन्धि मरुद्बलेन ॥१०॥

आत्माऽऽत्मानं बुद्ध्वा सुसुखोपाये ततः प्रबर्द्धेत ।
अतएव भविष्यति स्याज्ज्ञानं न मुनेर्द्वितीयस्य ॥११॥

पठनादिषु न विरक्तिः पुंसो भवतात्कदापि कस्यापि ।
स्वं धारयामि नाहं किमिव परे मां धरिष्यन्ति ? ॥१२॥

मिथ्यैव ब्रुवते सकज्जलकलासङ्गात्परेषामपि
व्यालुब्धं कुलमत्र न प्रभवति व्यक्तं कलङ्काङ्कितम् ।
तन्वङ्ग्याऽभिमुखागते विवशया लज्जाभयव्याकुलं
क्षिप्तं कुत्रचिदेव चक्षुरखिलं म्लानं पुनर्मे मनः ॥१३॥

दिव्यः पन्था यदपि भवतो व्योमयायिन्नभस्तः
पातो मा भून्मनसि ननु ते वारसीमन्तिनीनाम् ।
नेत्रे नासां श्रवणसरणिं मुञ्चतो नैव नापि
क्लेदो लक्ष्यः स्वकरपिहिते वक्षसीक्ष्यो मयापि ॥१४॥

सति शास्त्रे ह्यभ्यस्ते काव्यं कुर्यात्कविः सुसुखम् ।
कुड्ये कल्प्यं चित्रं तस्मात्कुड्यं प्रसाधयेद्धीमान् ।।१५।।

कविताकामिनीकेलिकारिणा कविमौलिना ।
कुतुकाल्लपितं किञ्चित्काव्यं नव्यं व्यजायत ।।१६।।

जन्म कर्म भवेद्दिव्यं कवेः कस्य सचेतसः ।
स्वराज्यं व्यज्यते यस्य नन्दनानन्दनाटके ।।१७।।

काव्यं कविर्जगृत एव सत्यं
तथ्यं तथैव कविता वनितापि भर्त्तुः ।
न प्रेमपात्रमयि चित्रमिहैव दृष्टं
यावन्न तां भरति कश्चन राजराजः ।।१८।।

जन्माऽऽप्य चेज्जगति बुद्धिमवाप्य शुद्धां
लेखैः कविर्न जनयेज्जनतां सुवृद्धाम् ।
ऋद्धामवाप्य वद कीर्तिमनादिसिद्धाम्
प्रीतिं प्रयातु कथमादिरसानुबिद्धाम् ।।१९।।

उद्दण्डशब्दगतडम्बरशम्बरस्य
माया न दम्भयति कं कपटेन डिम्भम् ।
किन्त्वर्थदृष्टिमहते कविपुङ्गवाय
सैवोत्तमापि विकटा निगडोपमेया ।।२०।।

अस्मादृशामपि चरित्रमिदन्तु चित्रं
मित्रं सखे किमिव संश्रयतां वहित्रम् ।
पित्र्यं पदाम्बुजमुदीतमवेत्य नित्यं
तत्त्र्यम्बकस्य चरणे शरणे निमग्नम् ।।२१।।

साहित्यसारमनवाप्य कविर्न काव्यं
कर्त्तुं कदाचन भवेत्प्रभुरित्युदग्रा ।
चेन्मामकीनमतिरुत्तरकल्पिका स्यात्
सर्वेऽपि तुल्यपदवीं सुकवेर्भजेयुः ॥२२॥

सामग्री न समग्रा व्यग्राशय्युत्कटं चेतः ।
सन्तोषयेन्नितान्तं शान्तं परमत्र न ब्रूयात् ॥२३॥

विद्याः कथं न विनयेयुरमुं गिरीश
लब्धानताः खलु नताननशालिनापि ।
अद्रव्यमेव शिशुकं बिबुधोऽभिधासी
रेतेन मा हृदयदुर्बलतामपेक्ष्य ॥२४॥

एनं समुद्धतविकीर्णनिकृष्टबुद्धि
मत्याऽस्थिरं वपुषि चाप्यपहीनमेकम् ।
मां चेन्निभालयसि नाथ न सांपराये
पातः कथं न भवितास्यगुरो न जाने ॥२५॥

कथन्न हेमन्तऋतुर्विलासिनी-
रुपादिशच्चारुविलासदर्शनम् ।
य ओष्ठकम्पं तनुभङ्गसीत्कृते
रुतादि चाख्याति कनीयसा समम् ॥२६॥

रागारुणः कुमुदिनीषु करप्रसारात्
कालं जडं मधुरयन्स्वरुचां चयेन ।
लावण्यमात्रललिते स कथं विहस्तः
स्वस्मिन्निव भ्रमसि खे बत हैमचन्द्र ॥२७॥

तुभ्यं नमो हरिणसुन्दर रम्यमूर्त्ते
तारागणाचितनभः शिरसादृताय ।
हेमन्तचन्द्र वद कोपकषायिताया
बध्वा मुखं समनुयासि कथं त्वमेव ॥२८॥

मुक्ता इवोपचरितुं सकलोपि ताराः
कर्पूरपुञ्जमिव दिक्षु दिशन्स्वरश्मीन् ।
काः सुन्दरीरगदयस्यधुना ब्रवीहि
सायन्तनं गगनपल्वलराजहंस ॥२९॥

केषां स्यान्नहिताय स्वाराज्यानन्द किं वदन्त्युपमा ।
जाने कथन्नु बिभ्यति सर्वेऽप्यबुधास्ततोऽप्यतुष्यन्तः ॥३०॥

नक्तं मयानुचितमाचरितुं विचारः
प्रातश्च तस्य परिहाररुचिः स्वचित्ते ।
संरक्ष्यते यदि वद द्रुतमीश्वरि त्वं
किं मे ततः प्रकृतिनिष्ठमवैषि मातः ॥३१॥

नाहं तवैव कृपया विषये सृजेयं
नाहं तवैव कृपया न वहिर्भवेयम् ।
किन्तु ब्रवीमि पुरतस्स तव प्रसह्य
मातर्न मूढपदवीं तु कदापि देयाः ॥३२॥

गङ्गा विपक्षमपि मातरुमे मदर्थं
भूयोऽनुरुध्यमतिमर्पयतूत्तमांसा ।
नाहं बिमूढमतिरेमि गतिं कदाचि-
ल्लोके सुविस्तृततरेऽपि पुराऽऽत्मनीनाम् ॥३३॥

यासां तीक्ष्णकटाक्षबाणलहरीमग्नाः प्रभग्नाशया
देव त्वत्पदपङ्कजं विधिवशात्पश्यन्ति साध्वाश्रयम् ।
तासामम्बरचुम्बि चारुयशसां पौराङ्गनानां प्रभो
प्रेमापूर्वमलक्ष्यत त्वयि कथं कामारिताहेतुना ॥३४॥

प्रियया यदि तेन ते जिताः शुचिलावण्यविमृष्टकान्तयः ।
हृदयं दलयन्त्यनङ्ग ते शररूपाः स्मरणेऽपि मे कथम् ॥३५॥

उदारता मास्मभवद्गता क्वचित्
प्रवेपते मे हृदयं दयामय ।
इहास्तु लोके न कथा यथा तथा
त्वदीयदासस्य नवाधिकार्हणा ॥३६॥

योऽयं शशाङ्कतिलकोऽमृतराशिगौरः
कान्त्या स्वयाऽमृतरुचा दृगपाङ्गभासः ।
कैलासमुज्ज्वलयति प्रथितावदानो
विद्यागुरुः स तु भवेच्छरणं ममापि ॥३७॥

यत्राश्रयं विषमवाप परेऽपरेपि
ते तादृशाःप्रणयिनो ह्यभवँश्च यस्य ।
मेरोरिवास्य महतो न कथं समीपे
मे रोदनं खलु भवेदुचितं वदध्वम् ॥३८॥

चेत्त्वं न नाथ मम भालतलेऽङ्कितानि
दृष्ट्वाक्षराणि बिधिना परिमार्जनाय ।
नूनं विधिं बतविधास्यसि तत्तदा मे
शिष्यात्परः क इव काशकुशावलम्बः ॥३९॥

येऽप्याशुतोषविधिना विहतप्रभत्वा
त्वय्यात्मना न विधिवत्प्रणयात्सचन्ते ।
तेषामिहैव चिरनष्टधियां विधानं
नानन्ददं प्रति कमप्युत नावलोच्यम् ॥४०॥

सम्मानमर्हति जनो यदि मादृशोऽयं
कर्तुं न शक्यत इहेश्वर तस्य मानः ।
लोकेऽवमानयितुमर्हति नाथ सोऽयं
कः स्वेतरं यदि भवेत्कृपणो न सोऽपि ॥४१॥

सम्मुग्धस्तव विभवे भवेऽनुबद्धो-
ऽपध्येयः कथमपि नो भवन्विधेयः ।
स्त्री नीचप्रकृतिरहं विभो प्रमादो
क्षन्तव्यः खलु भवतो गुरूत्तमस्य ॥४२॥

हित्वा त्वामपरमहं न वै निरीक्षे
शासेद्यो बत भुवने शिशून्स्वकीयान् ।
उद्योगः खलु तव मत्युपार्जनाय
श्रीकठ क्रियत इति त्वदीय एषः ॥४३॥

आकाशात्पतति जलं पुनः प्रवह्या-
म्भोधिं तद्विशति यतो निसर्ग एषः ।
एवं तत्पशुसमजेऽत्र जायमानं
कर्म त्वां तदपि न किं सुखं रुणद्धि ॥४४॥

स्वाम्यं ते किमपि कुले मतं पशूनां
तेषां वै स्वयमिह नो दधासि कृत्यम् ।
ते तु त्वां नियतमुपासतेऽनुरागात्
येषां ते वदनविलोकनेऽभिमानः ॥४५॥

सामादि प्रतिविहितं चतुष्टयं चे-
दस्मासु प्रभुवर नो फ़लं दधाति ।
माया किं ननु भवतोदभावि तस्मै
नोपेक्षा विदिततमा प्रयोजनाय ॥४६॥

त्वां मन्ये प्रभुवर सूपदेशसिद्धं
नो चेत्ते कथमिव वा भवेत्प्रभुत्वम् ।
विज्ञानं खलु जगतीं बिभर्ति सर्वां
तन्मूलं गुरुवचनोपदेशमाहुः ॥४७॥

राजा त्वं वयमिह च प्रजानिहीना
ते नीतिं परिचरतो न साधु विद्मः ।
काश्चित्त्वप्ययि गतिमुत्कमुग्धनेत्रा
लौल्यं स्वं शिशव इवातिदर्शयन्तः ॥४८॥

कालोऽयं ह्युदयकरो न वा मुनीनां
नो भावी यदि भगवन्नकाण्ड एव ।
सर्वं ते भवति बत प्रणष्टमेतद्
विज्ञानं द्विजवर धर्मरक्षणार्हम् ॥४९॥

तस्मात्ते ननु शिरसा निपत्य सोऽहं
बालोऽपि प्रकरणबोधनं चरामि ।
जह्या मां ननु बत सूपदेशमीश-
व्याख्येयं खलु भवति ग्रहेण योग्यम् ॥५०॥

यादृङ्मे मतिविभवो भवास्ति तादृक्
चिन्त्यार्थः कथमुदयेदपि प्रलापः ।
संलापः खलु सुखयेत्कथं त्वनन्तं
क्षीराब्धेर्जलमिव गाढमुत्प्रशान्तम् ॥५१॥

दोषाणां कथमिव नाकरोऽहमेको
मह्यं ते कुटिलतमास्ति नैव यत्नः ।
नो चेन्मां कुत इतिरूपमाविचिन्त्य
स्निग्धस्त्वं बत विरलः शिवात्यतिष्ठः ॥५२॥

मन्ये ते गतिरुपरि प्रजा न केषां
विज्ञाने बत भवतीति चिन्तयाहम् ।
धन्यस्त्वं खलु भवसीह साऽपि धन्या
क्षुद्रोऽहं प्रभुवर केवलं ह्यधन्यः ॥५३॥

कल्याणीमतिरुदयेन्ममापि नाथ
त्वां मन्ये प्रभुमवतीर्णचारुवेषम् ।
देशं मे बत न च नामधेयमीश
प्रश्नार्हां कथमपि लम्भयेर्गतिन्त्वम् ।।५४।।

कं विभो बत समेष्यसि कामं
मामलौकिककर्माणं प्रविधाय ।
अन्यथा किमु भवेन्नहि भोगः
कर्मणां मम महेश्वर रम्यः ।।५५।।

स्वप्ने सङ्कल्पसृष्टिर्निखिलबुधजनैरिष्यते भासते सा
जाग्रत्येवं भवेच्चेज्जगति न जगतामीश्वरस्येच्छया नो ।
आत्मा लब्धः प्रयत्नाद्यमनियममुखाद्योगसिद्धस्य साधो-
रैश्वर्यं प्राप्य कस्मादपि नहि लभते यद्भिदां सन्नियन्तुः ।।५६।।

तवेक्षणे सुन्दरि मे हृतेक्षणे तथान्वभूतामपदेऽर्पितां ह्रियम् ।
यथा न तेत्वन्नयनावनोदितामपश्यतामात्मनि तां विराजतीम् ।।५७।।

ज्ञातासिनोमेकममुं युवानं कृतार्थयिष्यस्यदयान्तरात्मा ।
मयाऽपि संगच्छ ततोऽभिधास्ये ममापि पुण्यानि कियन्ति सन्ति ।।५८।।

गतः स कालो यत्रासन्पुटपाकसमा गृहाः ।
अधुना विनिमातव्या वातादकवचोपमाः ।।५९।।

न तपः प्रतिबन्धमन्युना किमृषिस्तं चिनुते पुनः क्षणात् ।
परमस्य तथाकृते भवन्न परस्मात्परिभूतितोनधीः ।।६०।।

न वयं भवबन्धमोक्षणे कृतचित्ता अधुना यथा पुरा ।
करुणावरुणालय प्रभो दहरेन्तर्यमिता त्वमेव नः ।।६१।।

मोक्षः संप्राप्यते यस्य कृपयाऽभेदचिन्तया ।
तमार्यः सेवमानोन्यं कं नु सेव्यं निवेदयेत् ।।६२।।

दिव्या माया दुर्निरूप्येन्द्रजालं
जन्मैवासां लोकसंमोहनाय ।
विद्यां शक्तिं संविदं चेतनां वा
स्वात्मानं वा नैव विद्मोऽतिरिक्तम् ॥६३॥

अनिच्छयाऽपि कविभी रच्यते श्लोकसन्ततिः ।
दिव्याः सन्तोऽपि कवयो वशिताः कवितास्त्रिया ॥६४॥

कठोरपीनोच्चमुरोजयुग्मयोः
करे कृतं येन निपीडनैषिणा ।
कथं स तल्लाभनिरस्तकामनः
पुनः परस्मायपि हारयेत्करम् ॥६५॥

सच्छिष्यं संविधत्ते चेत्सद्गुरुः स्वात्मनोऽधिकम् ।
नैतन्मम मतं चित्रं पार्थं द्रोणोऽधिनिर्ममे ॥६६॥

नरं यमानन्दयितुं स्वकीया नार्हत्यनङ्गोल्लसिताखिलाङ्गी ।
कथं नु तस्य प्रमुदेऽन्यवामा सामान्यतापङ्ककलङ्कशङ्का ॥६७॥

मन्ये ह्यनङ्गः प्रतिरङ्गमेता सामान्यनारीमवलोकयद्भ्यः ।
दृष्ट्वा प्रयत्नात्परकीयवामां जनस्तु जानात्यखिलः स्वमिन्द्रम् ॥६८॥

आः वक्त्रचन्द्रमयि सुन्दरि दर्शय त्वं
लोलालकावलिपथान्तधृतैकवेणि
चञ्चत्कटाक्षमधरस्मितशोभि येन
मन्नेत्रयोरमृतपारणया धृतिः स्यात् ॥६९॥

इच्छाम्ययेन मदनायतनाङ्गि किञ्चित्
त्वद्दर्शनादपरमप्यमृतैकपानम् ।
तद्दर्शय स्ववदनं परिपूर्णचन्द्रं
निस्तन्द्रमाचरति यन्मयि चारुतृप्तिम् ॥७० ।

चन्द्रोऽपि चूर्णयति चित्तमिदं मदीयं
तत्कौमुदी न मुदमातनुते नितान्तम् ।
तद्वक्त्रचन्द्रमयि दर्शय सुन्दरि त्वं
यत्कौमुदीमुदमिहातनुतां मदीयाम् ॥७१॥

त्वद्वक्त्रचन्द्ररुचिदत्तमहोत्सवस्य
चन्द्रो न मे क्षणमिहाचरिताऽपराधम् ।
त्वत्कौमुदीसहचरी मम कौमुदीं तां
मोदावहां बत विधास्यति लोलनेत्रे ॥७२॥

जानासि वा न हृदयं मम पीड्यमानं
मारेण निर्दयतरेण वियोगखिन्नम् ।
दृष्ट्वैव वा यदिदमेति नितान्तपोषं
रोषायतस्य दयितेऽतिसमुत्सुकन्त्वाम् ॥७३॥

जानाति किं रतिमिवाथमनङ्ग वीरस्-
त्वां मन्मथैकरसवर्द्धिनि चारुशोभाम् ।
यन्मां त्वदीयमुखदर्शनतोऽपि नित्यं
प्राग्वञ्चयत्यहह धूर्तकलाधरेण ॥७४॥

सरसविकचपद्मोत्फुल्ललोलाक्षिलीला-
नियमितहरिनेत्रक्रान्तचन्द्राभवक्त्रा ।
मदनशरनिपातेनेव या सङ्कुचन्ती
विनमितवदनाऽभूत्पातु सा राधिका वः ॥७५॥

चल चपल मया किं चारुनेत्रानना सा
तव वसति तु चित्ते कापि जीवेश्वरी याम् ।
चरणनखविलेखैर्भाललेखां लिखन्ती-
मनुनयसि रुषाक्तां स्वस्यसौभाग्यहेतोः ॥७६॥

इति गदितवती या लोलनेत्रोत्पलेन
प्रहरति हरिवक्त्रं चारुचन्द्राभशोभम् ।
तदुदितभुजलीलामङ्कपालीं नुदन्ती
विहसितवदनाभा पातु सा राधिका वः ॥७७॥

सरसललितनेत्राऽऽदाय कृष्णस्य हस्ता-
दधरमधु दधानां वादयन्तीव वंशीम् ।
हरिमपि मधुरास्यं लीलया लज्जयन्ती
हृदयमपहरन्ती पातु सा राधिका वः ॥७८॥

हरिरवतु सबन्धुः सर्वदा चारुराधा-
ललितचपलनेत्रोन्मीलितानङ्गदुःखः ।
गणयति हि वियोगं कान्तया यो निरस्त-
स्तदमलमुखलब्ध्यै संविशन्नङ्कदेशम् ॥७९॥

कमलनयन लोलं किं कटाक्षं मदीये-
ऽधरमधुनि दधासि क्षीणबिम्बोज्ज्वलाभे ।
तव तु सरसदृष्टिश्चेतसो मोहिनी सा-
ऽधरयति खलु यान्यां सुन्दरीं मोहिनीन्त्वाम् ॥८०॥

इतिसरभसमुक्तो राधयाऽऽघाय दृष्टिं
कृपणमिव मुखेन्दौ दत्तपाथेयतृप्त्या ।
अभिनवमदरम्यः प्रेमपीयूषवल्गत्-
स्तुतिभिरिव निषिञ्चन्पातु कृष्णः कटाक्षैः ॥८१॥

अयि विकचदलानां फुल्लनीलोत्पलाना-
मवजयननिमित्तं दिक्षु चक्षुः क्षिपन्ती ।
कमिह सुभगमौलिं लोलमालोकसे त्वं
रतिरिव कुसुमेषोर्मोहयन्ती जगन्ति ॥८२॥

प्रणयकलहवामा रोषमासज्य पत्या-
वनुनयति मृषैव क्षीरमुग्धामलाक्षी ।
सुखयति न तथामुं मान्मथैरिन्द्रजालै-
रनघयति यथासौ मौलिमाला वधूनाम् ।।८३।।

हे पुष्पगन्धमय गन्धवहाभिनुन्ना-
न्गन्धान्विकीर्य तव कः प्रमदादिरेकः ।
कोषं न यज्जहति ते हिं कदर्य्यभावं
व्याख्याति तन्मम पुनर्महिमा तवायम् ।।८४।।

चन्द्रेऽपि नाम न यदेति सुनिर्वृतिं मे
त्वद्वक्त्रदर्शनसुखैकरसं मनोऽद्यः ।
तच्चोरितं प्रियजनस्य कथं त्वया हा
बाले प्रयासि बत हे क्व तदप्रदाय ।।८५।।

चन्द्रेण किन्नाम कृतं नलिन्या
या तन्न पश्यत्यनघोत्पलाक्षी ।
चेच्चन्द्रिकामीर्ष्यति रम्यरूपां
न भानवे साऽर्हति हर्षमाप्तुम् ।।८६।।

दयालुत्वं दर्शयिष्यत्यां व्यथा हृदि सान्त्वये ।
स्वयं मां प्रत्यागमिष्यति संस्मरन्श्वासान् स मे । ८७।।

शवे भस्म किरन्त्य एता द्रक्ष्यथालय आशु हे ।
मां मृतां स मनाक्शृणोति कठोरतां परिवर्जति ।.८८।।

मत्तेभमन्दगमनोत्पलपत्रनेत्रा
बिम्बाधरा शुकमनोहरनासिका सा ।
अन्तर्मनो मम सखे सुमुखी प्रविष्टा
पीनोन्नतस्तनभरावनतांसशोभा ।।८९।।

मध्यस्तवायमसितोत्पलपत्रनेत्रे
वक्षोजभारमधुनोत्सहते न वोढुम् ।
तन्मे निवेदय युवानममुं कृतीन्द्रं
यस्याङ्कमुत्सुकयसेऽयि नितम्बिनि त्वम् ।।६०।।

हे शारदे जननि सन्नवनीततुल्यं
कृत्वा मनो मम विशत्वमुदारवाणीम् ।
यत्संस्कृतामनुवदन्सदसि त्वदुक्त्या-
माराधयेयमखिलं जडजीवलोकम् ।।६१।।

चन्द्रानना विकचपङ्कजसुन्दराक्षी
सा मे जहाति हृदयं न कदापि वामा ।
कामं धनुर्धरमतोऽहमुपासितुं भोः
शृङ्गारसान्तरवसन्तभुवं भ्रमामि ।।६२।।

लोलेन नेत्रनलिनेन किमीहसे त्वं
भ्रूभङ्गसुन्दरतरेण सुलोचने मे ।
जानासि मां न शशिखण्डशिखण्डपाद-
सेवारतं मननदानववर्ज्यविप्रम् ।।६३।।

चन्द्रेऽपि चोरयति कान्तिकलां मुखात्ते
सर्वोऽभवत्सुमुखि वारिरुहां न गर्वः ।
यद्भृङ्गझङ्कृतिनिभेन परस्परेण
वार्तां सुखं विदधते मुखचन्द्रिकायाः । ६४।।

चन्द्रश्चन्द्रः खमुखे कमलं कमलं यतो विमलम् ।
कथमिव तस्या वदनं सदनं लक्ष्म्याः सुखेन वर्णयितुम् ।।६५।।

संपाद्य काव्ये सुजनैर्विभाव्ये
कविः कवित्वें प्रणयेत्सवित्वे ।
आत्मा हि बिम्बं कविताऽनुबिम्बं
स चेत्कलङ्की मुकुरोऽपि पङ्की ।।९६।।

पतितात्पतितादश्वात्पतितः पतितं मणिम् ।
पृच्छन्तो न प्रिया कस्य भवेद्धास्यप्रवर्तिनी ।।९७।।

दृष्ट्वा कश्चित्सुन्दरीं मार्गबन्धु-
र्बन्धूकौष्ठीमञ्चलं मार्गमाणाम् ।
जोषं दृष्ट्यैवाहतः स्माह ,खेदात्
दाक्षिण्यं ह्रीर्नाकुलीनासु शीलम् ।।९८।।

दर्शं दर्शं केशपाशान्वधूट्या
बन्धूकौष्ठ्या नेत्रत्राणाहतोऽपि ।
जोषं जोषं स्माह तां प्रत्यचिन्तो
दाक्षिण्यं ह्रीर्नाकुलीनासु शीलम् ।।९९।।

नैजो बन्धुर्भीतः कश्चिच्छत्रुर्वा यः प्राणाद्यर्थी ।
आप्तानां वा वाक्यं मन्ये लाल्यः पाल्यः काल्यो माल्यम् ।।१००।।

बालो नैजो भीतः शत्रुः शत्रुश्चैकः प्राणे धर्मे ।
आप्तानां वा वाणी लोके लाल्यः काल्यः पाल्यो माल्यम् ।।१०१।।

सुखैकदात्रीं जनतैकधात्रीं
विलोक्य गङ्गां प्रचलत्तरङ्गाम् ।
के वा न सेवाचतुराः सदेवा
बुधाः प्रणन्तुं शिरसाऽभिमन्तुम् ।।१०२।।

राजन्यवीरो न भवात्यधीरो
रामैह्यपारं प्रतराल्पसारम् ।
पयोधिमेनं हठतोऽभिसेनं
गर्ज्जन्तमार्य्यं प्रकृतावववार्य ॥१०३॥

विलोक्य रामं खललोकवामं
का वा न वामा नितरां सकामा ।
मुखेन लोलाञ्चलदृक्पुटेन
क्षणं निदध्यौ परतो विदध्यौ ॥१०४॥

विलोलहारं चलकृष्णतारं
निशाभिसारं प्रियतानुकारम् ।
सकाममारं रमणीविहारं
बभार सारं जनताप्रहारम् ॥१०५॥

परेण गन्तुं विजयेऽभिमन्तुं
सेनान्यमेकं प्रियताभिषेकम् ।
दधार राजा विधिनोर्ज्जिताजा-
वपास्यनीचीनसमुद्रवीचीन् ॥१०६॥

सुसत्त्वरा या जनतापराया
राजन्यमाला जनिताऽऽधिजाला ।
कथं समेतेऽप्यसमे पदे ते
विधातुमेते सुखिते निकेते ॥१०७॥

कालेन लोला रमणीव दोला
कोलासितेमां क्षणभासितेलाम् ।
पतिष्यति द्राग्विवरिष्यति द्राङ्
नयप्रहीणं जनताधुरीणम् ॥१०८॥

प्राणेशबाला जनिताऽऽधिजाला
मालापि नीलासमपुष्पशोला ।
मालापि का वा जनताविरावा
सुखेन नन्तुं विहिता विहन्तुम् ।।१०९।।

पटीरनीरार्द्रसुवेषचीरा
हीराच्छकान्ती रमणी प्रयान्ती ।
न चन्द्रिकायां हततन्द्रिकायां
मनो हरत्यस्य कथं वरस्य ।।११०।।

प्रायेण काले जनतापटाले नवे पयोदे विवलत्प्रमोदे ।
वाराङ्गनानां च कुलाङ्गनानां न भाति भेदो नन को विवेद ।।१११।।

काव्यानि कर्त्तुं सुखितं विहर्तुं न सन्ति लोके प्रथमेऽवलोके ।
परन्तु देवा अपि कीर्त्तिरेवाबिन्ध्या न गातुं न यशांसि पातुम् ।।११२।।

धीरे समीरे यमुनाप्रतीरे कृष्णेन रन्तुं वनिताऽपमन्तुम् ।
चकार राधां मदनार्धबाधां साधारणीं स्वां विदधे ततोऽस्वाम् ।।११३।।

चन्द्रार्धचूडे शरणार्थिनीडे गङ्गोत्तरङ्गा लसदङ्गभङ्गा ।
सोत्प्रासहासा ननु फेनभासा चकार गौरीमभिमानगौरीम् ।।११४।।

लक्ष्म्या विलासान्सरसान्प्रहासान् सस्मार विष्णुर्मदनाधिजिष्णुः ।
राधानुरागं विदधेऽविभागं तस्मिन्नृदेवे विधिदत्तसेवे । ११५।।

अनङ्गभङ्गीभिरुदारमङ्गीकृतं तदास्यं स्मितचारुलास्यम् ।
सपक्ष्मनेत्रव्रणितेन्दुलक्ष्म जहार तुल्यं जगतोऽपशल्यम् ।।११६।।

सायन्तनीयां द्युतिमादसीयां विहन्तुमेका रमणी समन्तुम् ।
वक्त्रं दधे मन्मथचक्रवक्रं शिश्वेत चन्द्रोऽपि ततोऽस्ततन्द्रः ।।११७।।

ददासि मे किं स्वतनुं न दासि प्रहासितो ऽहं स्वजनैरनर्घ्यैः ।
मारेण विद्धं हृदयं ममेद्धं संयोज्य ते तेन धनुः शरेण ।।११८।।

चन्द्रोदये तं रमणीनिकेतं प्रियं निनाय स्वह्रियं जिगाय ।
कथन्न तस्याः प्रणयः परः स्यात्पुमान्न वासोऽपि वधूवशोऽपि ॥११९॥

व्योमाशु चन्द्रोऽपि निरस्ततन्द्रस्तमांसि हन्तुं वनिताविहन्तुम् ।
जगाम तारा ललिताङ्गहाराः प्रियानुकाराः प्रमिलन्स्वदारान् ॥१२०॥

मनः श्रमं यास्यति निश्चितं ततो
न तन्निरुन्ध्यात्समयातिवृत्तिषु ।
इतोऽप्ययये धाव कुतो नु यास्यसि
प्रक्रीडितोऽहं भवतेति लालयेत् ॥१२१॥

आस्वाद्य चेद्वैषयिकान्हि कामान्
मनो न विस्मर्तुमिदं प्रभावि ।
नपात्य एकत्र तु तत्र दोषो
तत्प्रेरितं नाम गतं स्वतो न ॥१२२॥

आत्मार्पणं नाम कृतं मनीषिणा
शरण्यश्रीश्रीचरणाम्बुजद्वये ।
भवेऽनुयातुं प्रभवेन्न कोऽपि तं
सुखेऽपि मोक्षेऽपि च नातिसस्पृहम् ॥१२३॥

न केऽपि योगाः खलु भक्तिसाधना-
दृते फलिष्यन्ति नृणान्तु मादृशाम् ।
भवार्णवोत्तीर्णगतिं चिचीषतां
प्रमाणमाराध्य पदाम्बुजं तरे ॥१२४॥

सकृत्स्मृतिस्सन्तनुते स्मरज्वरं
जगद्यदीयैश्च गुणैः सुरञ्जितम् ।
कथं हरेयुर्न मनस्तुतानृणां
प्रफुल्लनीलोत्पलतुल्यचक्षुषः ॥१२५॥

कस्यापि धन्यस्य कवीन्द्रवश्य-
स्योदारवेषा जनितापदेशा ।
कलङ्कपङ्कापगमादशङ्का
जहार वाणी जनचत्त्वराणि ॥१२६॥

विद्याऽनवद्या विबुधेषु गद्या
विभाति हृद्या जनतार्त्तिहृद्या ।
न तां निषेवेत कविर्नृदेवे
कथं ससेवे सकलेऽपि देवे ॥१२७॥

सौवर्णी संस्तुतबहुगुणा मेऽनुरूपा त्वयेति
श्लाघित्वैवं प्रियतनुरुचा तुल्यतां नीयमाना ।
नाप्त्वामुं ते करकिसलयं सन्नकण्ठीं क्वणन्ती
सेयं काञ्ची ध्रुवमसहना बाधते मां नितम्बे ॥१२८॥

कार्श्योन्मुक्तः सिततरकरैश्चन्द्रिकाक्षीरवार्भि-
र्धावन्धावं वदननिहितं कालिमानं प्रलिप्तम् ।
मुग्धाक्षीणामयमिह भुवन्प्रेक्षणीयः कटाक्षै-
र्मूर्च्छंश्चन्द्रो वहति वनितावक्त्रसाम्यं चिराय ॥१२९॥

नीलाम्बराङ्कुरितरम्यतनुर्धरेह
स्निग्धस्वरः प्रणदिता कलकण्ठवर्गः ।
काले पयोदविपुले परदेशवासं
मुग्धाशयैव कलयन्ति युवान एते ॥१३०॥

भ्रमदभ्रमदभ्रं त्वं विषये विषयेऽभ्रमः ।
भवतो भवतोषाय परमो परमो यदि ॥१३१॥

सकलमयि मयि प्रलीनमासीद्
गुरुबुधवृद्धजनोपदेशजालम् ।
अथ परिजनलम्भनाय तस्य
प्रविकशितेन भवानि नोर्णनाभि. ।।१३२।।

यद्गन्धलेशात्स्वाराज्ये सस्पृहाः साधुचेतसः ।
तस्मै श्रीनन्दनानन्दनाटकाय नमोऽन्वहम् ।।१३३।।

दिवाकरोऽपि प्रतिमाऽऽनुपूर्वीं पश्यन्जलेब्धेः प्रतिरूपलोभात् ।
करान्प्रसार्याशुतरं प्रधावन् स्वान्तेन रक्तामुरसाऽऽलिलिङ्ग ।।१३४।।

गते दिनेशे रजनीं शशाङ्कोऽप्याश्वासयामास समुद्वसन्तीम् ।
करैः समुत्तोल्य तमोविकीर्णान्केशान्मनोज्ञानलिके चकार ।।१३५।।

निशां शशाङ्कस्य मुखंददानां पस्पर्ध बाल्याद्रुरुधेऽतिलौल्यात् ।
पुत्रीव तस्याः कबरीसुनीला पृष्ठांसभालं समलंचकार ।।१३६।।

सिन्दूररक्तोन्नतमस्तकस्य दृष्टारुणादित्यविलोचनस्य ।
नमो गजेन्द्रस्य तमोऽतिनीलं स्मृतैकदन्तं वपुरुन्ममज्ज ।।१३७।।

कार्यापदेशेन रहस्यमिच्छुः वियुज्य रात्रावलिनीलकान्त्याम् ।
रविः प्रभाते पुनरेव तूर्णमुच्छ्वासयामास सरोजिनीं किम् ।।१३८।।

सूर्योदयस्याभिनवानुरागा चक्रीव या काङ्क्षति काचनाली ।
तया समालिङ्ग्य वधूर्भुजाभ्यान्निरोक्षयन्ती वदनं चुचुम्ब ।।१३९।।

दरिद्रते कस्य कृते न पूरुषा विभान्त्यये धीगुणभूषिता अपि ।
तत्त्वं ममाख्याहि महापतिव्रते तथाविधानां भवनेऽसि साक्षिणी ।।१४०।।

कमलिनीमलिनीलदलावलिं न मलिनीकुरुतेऽप्यलिनीगणः ।
परिमलेन सुशोभितविग्रहां मृगयते नलिनं विकचं जले ।।१४१।।

सुखैकदात्रीं जनतैकधात्रीं
विलोक्य गङ्गां प्रचलत्तरङ्गाम् ।
के वा न सेवाचतुराः सदेवा
बुधाः प्रणन्तुं शिरसाऽभिमन्तुम् ।।१४२।।

राजन्यवीरो न भवात्यधीरो
रामैह्यपारं प्रतराल्पसारम् ।
पयोधिमेनं हठतोऽभिसेनं
गर्ज्जन्तमार्य्यं प्रकृतावबार्यं ।।१४३।।

विलोक्य रामं खललोकवामं
का वा न वामा नितरां सकामा ।
मुखेन लोलाञ्चलदृक्पुटेन
क्षणं निदध्यौ परतो विदध्यौ ।।१४४।।

विलोलहारं चलकृष्णतारं
निशाभिसारं प्रियतानुकारम् ।
सकाममारं रमणीविहारं
बभार सारं जनताप्रहारम् ।।१४५।।

परेण गन्तुं विजयेऽभिमन्तुं
सेनान्यमेकं प्रियताऽभिषेकम् ।
दधार राजा विधिर्नोगिताग-
वपास्य नीचीनसमुद्रवीचीन् ।।१४६।।

सुसत्त्वराया जनतापराया
राजन्यमालाजनिताधिजाला ।
कथं समेतेऽप्यसमे पदे ते
विधातुमेते सुखिते निकेते ।।१४७।।

कालेन लोला रमणीव दोला
को लासितेमां क्षणभासितेलाम् ।
पतिष्यति द्राग्विवरिष्यति प्राक्
नयप्रहीणं जनताधुरीणम् ।।१४८।।

प्राणेश बाला जनिताधिजाला
मालापि नीला समपुष्पशीला ।
मालापि का वा जनताविरावा
सुखेन नन्तुं विहिता विहन्तुम् ।।१४९।।

पटीरनीरार्द्रसुवेषचीरा
हीराच्छकान्ती रमणी प्रयान्ती ।
न चन्द्रिकायां हततन्द्रिकायां
मनो हरत्यस्य कथं वरस्य ।।१५०।।

प्रायेण काले जनतापटाले
नवे पयोदे विवलत्प्रमोदे ।
वाराङ्गनानां स्वकुलाङ्गनानां
न भाति भेदः सकलोऽपि वेद ।।१५१।।

काव्यानि कर्तुं सुखितं विहर्तुं
न सन्ति लोके प्रथमेऽवलोके ।
परन्तु देवा अपि कीर्तिरेवा-
विन्ध्या न गातुं न यशांसि पातुम् ।।१५२।।

धीरे समीरे यमुनाप्रतीरे
कृष्णेन रन्तुं वनिताऽपमन्तुम् ।
चकार राधां मदनापबाधां
साधारणीं स्वां विदधे ततोऽस्वाम् ।।१५३।।

चन्द्रार्धचूडे शरणार्थिनीडे
गङ्गोत्तरङ्गा लसदङ्गभङ्गा ।
सोत्प्रासहासा ननु फेनभासा
चकार गौरीमभिमानगौरीम् ।।१५४।।

लक्ष्म्या विलासान्सरसान् प्रहासान्
सस्मार विष्णुर्मदनाधिजिष्णुः ।
राधानुरागं विदधेऽविभागं
तस्मिन्नृदेवे विधिदत्तसेवे ।।१५५।।

अनङ्गभङ्गीभिरुदारमङ्गी-
कृतं तदास्यं स्मितचारुलास्यम् ।
सपक्ष्मनेत्रव्रणितेन्दुलक्ष्म
जहार तुल्यं जगतोऽपशल्यम् ।।१५६।।

सायन्तनीयां द्युतिमादसीयां
विहन्तुमेका रमणी समन्तुम् ।
वक्त्रं दधे मन्मथचक्रवक्त्रं
शिश्वेत चन्द्रोऽपि ततोऽस्ततन्द्रः ।।१५७।।

ददासि मे किं स्वतनुं न दासि
प्रहासितोऽहं स्वजनैरनर्घ्यैः ।
मारेण वेद्धुं हृदयं ममेद्धं
संयोज्यते कार्मुकशोभिबाणम् ।।१५८।।

रहसि चन्द्रकरेण विबोधिता
प्रकृतिशीतलतामयचेतना ।
सलिलशोषणमोक्ष्य विभाकरं
कुमुदिनीमुदिनीमुदिनीरसा ।।१५९।।

कुमुदिनीदयितेन निराकृतां
तुहिनबिन्दुलवैरुदतीमिव ।
उषसि रञ्जयते रविरञ्जसा
कमलिनोमलिनीमलिनीकृताम् ॥१६०॥

ये वर्णयन्ति पुरुषोत्तमपूरुषास्त्वा-
मप्यङ्गलग्नधिषणा वचसां वितानैः ।
ते प्रस्तराणि करयोस्तुलयन्ति हन्त
मन्ये विशालमुकुरप्रतिबिम्बहेतोः ॥१६१॥

प्रसन्नमास्यं तव दृश्यते प्रिये
प्रवक्तुकामा ननु मेऽसि किं प्रियम् ।
त्वया ह्यनङ्गः कुसुमान्यभिस्पृशन्
जगन्ति वश्यानि विधाय निर्वृतः ॥१६२॥

तवेक्षणे सुन्दरि मे हृतेक्षणे
तथान्वभूतामपदेऽर्पितां ह्रियम् ।
यथा न ते त्वन्नयनावनोदिता-
मपश्यतामात्मनि तां विराजतीम् ॥१६३॥

ज्ञाताऽसि नो मे कममुं युवानं
कृतार्थयिष्यस्यदयान्तरात्मा ।
मयाऽपि संगच्छ ततोभिधास्ये
ममापि पुण्यानि कियन्ति सन्ति ॥१६४॥

न न न नेति न नेति न नेति सा
मधुरवाचमुदीर्य सुराङ्गना ।
क्व नु गतेति विचिन्त्य न मन्मनो
ननु सखे लभते स्म सुनिर्वृतिम् ॥१६५॥

१५

हृदयोद्भेदनं पुंसां प्रीतेरुल्लासकारणम् ।
किमेतन्नीयते कान्ते कन्दुकद्वयसन्निभम् ।।१६६।।

मन्ये प्राङ्भिर्न कविभिर्दृष्टं रामायणद्वयम् ।
जनयन्ति स्म ते हन्त कुशलां काव्यसन्ततिम् ।।१६७।।

हारिझाङ्कारिललितपदविन्याससुन्दरीम् ।
छन्दोनुकूलां कृतिनो नर्तयन्ति सरस्वतीम् ।।१६८।।

न भवान्स्तुतिलोलुपः सखे
स समेषामपि निन्दको द्विजः ।
वचने यदि सत्यवाग्भवे
स्तुतिनिन्दे व्यवधूय नोत्थिते ।।१६९।।

नयने नयनान्ततर्जित-
श्चलकर्णोत्पलताडितोऽधरे ।
प्रतिकूलतयैव योषिता
शयनीये रमितो हृदीश्वरः ।।१७०।।

दृष्टौ दृष्टान्धकारः प्रधृतकरतलस्तूलवद्भ्रामितः खे
क्षोण्यां निर्जीव एवन्न्यपतदुरुबलोऽप्येष चाणूरमल्लः ।
नाश्चर्य्यं तत्र मन्ये सखि यदयमितो मुष्टिको मुष्टिपाता-
च्चूर्णीभूतोत्तमाङ्गो व्यधित रणनदीपङ्किलां रङ्गभूमिम् ।।१७१।।

शृङ्गाग्रमारुह्य कपिर्निषण्णो वनैकखण्डे लघुमन्दिरस्य ।
कापेयसैन्ये नयने दधानो निश्चिन्तमास्ते न चलन्प्रवीरः ।।१७२।।

दृष्टचोरावेश्य दृष्टी गतिविधुततती बाहुजानूरुबन्धान्
बन्धं बन्धं विमोच्योत्प्लुतगगनतलौ लाघवोल्लाघिताङ्गौ ।
मुष्टीमुष्टि व्युपात्तोत्तमरभसजवा वा रुजन्तौ पृथिव्यां
वृक्षाञ्छैलान्प्रयुद्धौ रघुपतिपुरतो बालिसुग्रीववीरौ ।।१७३।।

स्ववासनावेशवशाद्घनीभव-
न्मन्यस्व मायाङ्कुरमिन्द्रजालवत् ।
उदात्तचित्तस्य न चातिदुःखदं
प्रभावकान्तं विषयैः पराहतम् ।।१७७।।

किं योगिनां प्रीतिकरं वियोगिनां
संयोगिनां ह्रीतिहरं च कामिनाम् ।
किमेकमालम्ब्य तपश्चिनीषवो
ब्रह्मैषिणो ब्रह्म परं ह्युपासते ।।१७५।।

धनानामुत्तमं नारी प्रीयते सद्गुणैर्युता ।
मित्रं मित्रगुणैर्युक्ता विदुषां धनमेव तु ।।१७६।।

रोमाञ्चभव्यास्त्रिदशेन्द्रकन्या
गायन्ति कीर्त्तीस्तव शुभ्रमूर्त्तीः ।
कुमुद्वतीहंसशशाङ्कदेहं
श्रिता नृचन्द्र व्यपनीततन्द्रम् ।।१७७।।

सत्यानुसन्धानपरः शिष्टानुमितदेहधृक् ।
सर्वं सन्तुलयन्भक्त्या लोकोऽद्भुतपरीक्षकः ।।१७८।।

कुकृतेन शरीरधारणं तमसश्चापि महत्समुत्थितिः ।
त्रिदशौकसि वृत्रसंभवो ननु वार्ताङ्गमृणं तथा स्थितम् ।।१७९।।

यया नित्यमनित्यं च सदसद्भासतेऽखिलम् ।
विभोरभिन्नावयवां तां वन्दे परमेश्वरीम् ।।१८०।।

मिथ्यैव निर्माय महेन्द्रजालं
विमोहिताः स्वानवबोधदीनाः ।
संप्रापिताः केन दयापरेण
कष्टां दशां स्मो बत मायिकेन ।।१८१।।

दौर्गत्यपीडाऽविनयप्रतप्ता
सन्तानिनी चेत्सुभगा तथाऽहम् ।
न दृष्टमस्मिन्बत जीवलोके
दारिद्र्यमन्येन निपीड्यमानम् ॥१८२॥

वियोगसंयोगकृते विलक्षणां
स्थितिं समेयान्मनुजोऽपि धैर्यवान् ।
अतो हि नित्यं विबुधो विचारयेत्
स्विकां गतिं या खलु पारिवारिकी ॥१८३॥

विदन्ति कान्तामभिकाः प्रवीरा
वीर्य्योद्धतं शान्तिरतं विरक्ताः ।
गावः सगन्धं विबुधा विगन्धं
भजन्ति सन्तो न कदाप्यसन्तम् ॥१८४॥

न तथा रमणीं कपोलयो-
र्विदशन्नर्पितबाहुकां प्रियाम् ।
सुखदां मनुते यथैतया
स्वकपोलस्य हठाद्विदंशनम् ॥१८५॥

द्वाभ्याङ्कराभ्यां परिगृह्य कुम्भं
पीयूषपूर्णं प्रणिधाय वक्त्रम् ।
पिबन्पराभ्यामपि चञ्चलात्मा
शठः कराभ्यां स्पृहयत्यनास्यः ॥१८६॥

कपोलबिम्बं दशनालिलाञ्छितं
युवा निदध्यौ तृषितैर्मनोरथैः ।
फलं नु बिम्ब्याः शुकतुण्डखण्डितं
स्मरस्य चक्रं नु नितान्तकान्तिमत् ॥१८७॥

यः काङ्क्षतीमां नमतोऽयमस्याः
स्वयंवरा यं प्रति नोत्सुकोऽसौ ।
श्रीरेकपत्नीत्वमहो श्रयन्ती
दुर्वारकौमारमियं जगाम ॥१८८॥

तादृक्सुवृत्तपरिपूर्णसमुन्नतत्वं
संबिभ्रतौ समरसौ हृदयादृतौ च ।
कर्पूरचन्दनविलिप्ततनू समुक्तौ
तन्व्यास्तनौ दहत एव यदद्भुतं मे ॥१८९॥

स्तनाहितं हस्तमुदस्य मुञ्चती
पराङ्मुखी वीक्षणमप्यमुञ्चती ।
मनोगतं पत्युरिवेहितं वधूः
स्वचेष्टया प्राणयते पराञ्चिता ॥१९०॥

किमिति कनकवर्णे कन्यके लोलनेत्रे
भवसि मयि सरागेवास्यमादर्शयन्ती ।
अपि मधुकरवृत्त्या चेष्टमानः समन्तात्
कमलमुकुलकोषे को मधु प्राज्ञ इच्छेत् ॥१९१॥

अहो उदग्रेण मनोभवेन निपीडितोऽयं पुरुषो न वेत्ति ।
गतं क्व चित्तं बत सारसाक्ष्या विनोदमिच्छन्प्रणयेन तस्याः ॥१९२॥

वसन्त सन्तं न भवन्तमेके मन्यन्त इत्याहतमन्मथाज्ञा ।
कुहूरवैर्बोधयितुं समस्ताञ्जनानुदाक्रोशति कोकिलेयम् ॥१९३॥

अनुयात्वयि नाम कथं न्विमां मृणालीजडातिसुकुमाराम् ।
राधाया बाहुलतां परिचुम्ब्य हसन्हरिर्जयति ॥१९४॥

क्वेयं क्व वा मृणाली रतिबन्धे श्रमनिपीडितावयवाम् ।
राधाया बाहुलतां परिचुम्ब्य हसन्हरिर्जयति । १९५।।

किमपि कुपितरूपा स्नेहमाबन्धुकामा
स्वजनसखिनिरोधात्संमुखीना भवन्ती ।
ललितललितपादोत्क्षेपविन्यासशोभा
जयति हरिमुखेन्दौ न्यस्तचक्षुर्मृगाक्षी ।।१९६।।

आलोक्य यज्जन्मजरादिदुःखं धीरा जहत्येकमनन्तरूपम् ।
आत्मानमुग्रं भयभङ्गहेतोस्तत्सच्चिदानन्दरसं समीडे ।।१९७।।

गजाननं जायुमजं वरिष्ठं स्वात्मानमेकं प्रतियोगिहीनम् ।
मायाविभावैरनुभाव्यमानं चित्ताद्बहिश्शिवत्तगतं समीडे ।।१९८।।

आनन्दहेतुरेकैव भूयात्सा शिवसुन्दरी ।
पुष्पेषुर्भस्म यद्दृष्ट्या दध्यौ रत्याश्चुचुम्बिषन् ।।१९९।।

व्रतान्युपोष्याणि फलैस्तु मादृशै-
र्मनो ग्रहीतुं न समर्थमेकदा ।
विषायतेऽभ्यासमृते तपो नृणा-
मबुद्धिपूर्वं विषयावलीहतम् ।।२००।।

चापल्यं नाम दोषोऽयमङ्गना भूषयत्यलम् ।
संभावितमपि ह्येतच्चेतसो नापकृष्यते ।।२०१।।

सतीभ्योऽपि मनो याभ्यो दत्तं न पुनराप्यते ।
नाक्षिपेयुस्तु तत्कस्य चपलास्ता मृगेक्षणाः ।।२०२।

अयि ताम्यसि किं सीते रामचन्द्राननं दृशा ।
सस्नेहं पिब नान्यस्यास्त्वदेतद्भाग्यमर्हति ।।२०३।।

अर्था अलङ्कारितया निदध्युः
कवेर्हृदि स्वानि न चित्रमत्र ।
चित्रं हि यत्काव्यमुपाङ्गमाहु-
स्तत्रापि शब्दा गुणिनो न मन्ये ।।२०४।।

बालोन्मत्तौ ममत्वेन पार्श्वमेवाभिपश्यतः ।
तद्वदन्येऽपि जगति नोन्मत्तास्तेकुतो मम ।।२०५।।

स्वभ्यासमाहर सखे सुखितानुबन्धं
रम्येषु वस्तुषु पुनः पुनरेव सक्त्यै ।
स्वभ्यासतो भुवि भयान्यभयीभवन्ति
स्वभ्यासतो विषमुपैत्यमृतस्वभावम् ।।२०६।।

रहस्यमुद्घाटय कविस्तु वाचां
नितान्तपूज्यो विदुषामनर्थे ।
नग्नापि चेन्नृत्यति सुन्दरी स्त्री
नाश्लीलता नाम सकामचित्ते ।।२०७।।

चिताचिते स्वादयता समर्पितं
निपीडय यत्पौण्ड्रकसारवज्जगत् ।
स्ववेदनामात्रमिदं परं शिवं
महेन्द्रजालं पुरतोऽधिलक्षितम् ।।२०८।।

कुलश्रेष्ठस्य वा राज्यमाधिक्येन गुणस्य वा ।
प्रकृतीनां यथाप्रीतिस्तां न चैवातिशय्य तत् ।।२०९।।

बधूकटाक्षाद्दृतसौम्यचन्द्रिकः
प्रकाशलक्ष्म्यैव निगीर्णलाञ्छनः ।
दिवं समालिङ्ग्य निशां विरञ्जयन्
विपत्तिमाच्छंच्चरमां गतः शशी ।।२१०।।

भृङ्गकेशोऽप्सरःकर्षी सन्दधन्शरमञ्जरीः ।
कुर्वन्नधिज्यं प्रद्युम्नं मधुमत्तो हि फाल्गुनः ॥२११॥

इन्द्रामन्त्रणम्

ऐरावणीं परतनुं हरिकृष्णवर्णां
विद्युल्लताकलितनिर्मलवक्षसं ताम् ।
कादम्बिनीं प्रियसखीमनुरुध्य दृष्ट्या
संप्रीणयस्व जनतां मघवन् द्रुतं भोः ॥१॥

यत्स्फूर्जथुक्रममनुप्रतिलोमहर्षं
वाराङ्गनाः कृपणतां जहति प्रियेषु ।
स्निग्धात्प्रसादभिसरन्ति धुरीणबध्व-
स्तत्प्रीणनं प्रभुवराऽऽद्यमिमेऽभिविघ्नः ॥२॥

धत्ते नभो यदृजुरोहितशालिशोभां
पुष्णाति यां सिततनुर्बकपङ्क्तिरद्धा ।
स्निह्यन्ति चातकमयूरमुखाश्च यच्च
तत्सर्वमिन्द्र भवतो नयनेङ्गितानि ॥३॥

यद्ग्रीष्मभीष्मकिरणैः परितापितानि
जाज्वल्यमानपवनैरसुपीडनानि ।
चक्षुःप्रमोषकमिवोद्दलनं रजोभिः
सर्वं विलुम्प भगवन्भृतभूरिवृष्टे ॥४॥

उत्कः प्रवासिपथिको भवनं दिदृक्षु-
रुच्चैः पयोधरयुगोन्नतिमाचकाङ्क्ष ।
निन्ये कृषीवलगणैश्च सतृष्णदृष्टिः
पाटीरपङ्ककणशालिनि वारिगर्भे ॥५।

चञ्चत्तडित्प्रविचलज्जयवैजयन्ती-
विद्योतितां विवलितां श्रियमात्मनीनाम् ।
भान्तीं महेन्द्रधनुषा बकपङ्क्तिहारां
वल्गत्पयोधरभरोन्नतिगर्विताञ्च ॥६॥

पक्वानि संपरिणमय्य फलानि पुण्या-
न्यन्यादृशानि दिवि वा नृषु नो दिशन्तीम् ।
धारानिपातविसरैः सुशरैर्वराकान्
संक्षिप्य याहि मरुदग्रसरोद्वहैनाम् ॥७॥

माद्येदसौ न जनता मधुपानमत्ता
ताम्येन्न वापि वनिता रसपानतृप्ता ।
भ्राम्येत्कथन्न विविधेषु विशुद्धवारि-
बिन्दूल्लसत्तनुरुहा पवनेङ्गितेषु ॥८॥

अन्धे तमस्युपचिते श्रियमानिनीषुः
कामी रसात्त्रिचतुराणि पदानि गच्छन् ।
संत्रेपतां सुशिशिरैर्जलबिन्दुगर्भै-
र्वातैः सुगन्धिभिरनुक्षणमभ्रवाह ॥९॥

नद्यः समुद्रवनिताः परिमुद्रितास्या
मन्दं हठादभिसरन्तु पतिं नदीनाम् ।
उत्पल्लवैः खगकुटान् विविधैः प्रशाखैः
शाखैर्ह्वयन्तु विनताश्च लताः श्रयन्तु ॥१०॥

भूमिर्जवादभिनवैश्च तृणाङ्कुरैः स्वं
रोमाञ्चितं सवसनं वपुषं विकुर्यात् ।
सन्दर्शयन्तु गिरयो गहनानि तानि
स्वाः स्वाश्छटा घनघटा निचिताम्बुगर्भाः ॥११॥

संशम्य वारिनिवहैर्दववह्निजार्तिं
जीवस्य नैकविधपोषणकारणाय।
विक्रीडते भवतु ते मम सा नमस्या
श्रद्धामयी भवति या तपसां समस्या ॥१२॥

दिव्याः आत्मविभूतयः

ब्रह्माहं व्योममूर्त्तिः सदसदधिपतिः पूर्वपूर्वाभिजातः
स्रष्टर्षीणां सुराणां विधिविहितपरास्थैः प्रजेशैः समर्च्च्यः।
सर्गारम्भेष्वनन्तेष्वपि नियतिमुखे भाति या पूर्वसन्ध्या
तां पश्याम्येकदन्तारुणरुचिखचितां सर्वकार्ये समर्थाम् ॥१॥

कृष्णोऽहं रोमकूपेष्वपि मम निहितान्यण्डजालान्यनन्ता-
न्युत्कण्ठापूर्णचित्तैः सुरऋषिविबुधैरर्च्चिताऽऽत्मा सुयज्ञैः।
रक्षार्थं सप्रजानां दितिसुतसमरेष्वेकलग्नायुधाङ्गो
यायान्पश्यामिमङ्गल्यकलशमिषतः कुम्भयुग्मं गजस्य ॥२॥

रुद्रोऽहं वेदनेत्रो भसितसिततनुः संहरन्सर्वमेकः
पुष्पेषौ दृष्टरोषः परिणतमतिभिश्चिन्त्यमानो विविक्तैः।
दाक्षायण्याऽथमेना हिमगिरिसुतया सार्धमस्मत्प्रणेये
संबन्धे पूजयन्ति द्विपवरवदनं सूरयः किं स नेतः ॥३॥

सूर्योऽहं लोकचक्षुर्भुवनविवरमुद्योतयन्कर्म साक्षी
देवानामेकनेता कमलकुलसखो ध्वंस्तमो वेदवाहः।
आर्यां रुद्रं हरिं वा श्रुतिविहितमखैरर्चयन्त्यः प्रजास्तु
ध्यायन्तिच्छद्मबालं गजमुखमखिलप्रीतये मण्डले मे ॥४॥

आर्याऽहं शक्तिराद्याऽपरिमितविभवा ब्रह्मणोऽचिन्त्यतत्वा
मायाविद्यापराख्या त्रिगुणविगुणितामण्डकोटिं वहन्ती।
पार्श्वान्मे पृष्ठतो मे पुरत इव हसन्नग्रगोऽप्यङ्कसंस्थो
हेरम्बोऽम्बेति वाणीमनुवदति दधद्विश्वतोमङ्गलानि ॥५॥

सच्चित्स्वानन्दरूपं शबलमशबलं सद्गुणं निर्गुणं वा
मायानन्तं परेषामपि परममृतं ब्रह्म साक्षादमेयम् ।
ध्येयं यत्सोऽहमित्थं श्रुतिवचनमुखैर्भेदनाशैकगम्यं
तद्धेरम्बैकविद्यं भवति भजनतो योगिनामोमतत्तत् ॥६॥

स्कन्दोऽहं देवसेनेश्वर उडुपतिना गङ्गया वह्निना वा
नागेन्द्रैर्नन्दिनाऽथ प्रमथकुलमुखैर्मातृभिः शैलपुत्र्या ।
अङ्कैषूत्कण्ठयात्तः प्रणयपरवशैः किन्तु हेरम्बमेकं
मन्ये प्रीत्यै समेषामपि विभवयुतं योगयोगेश्वरेशम् ॥७॥

इन्द्रोऽहं देवराजस्त्रिभुवनपतिरित्यात्तसार्थक्यनामा
साम्नामेकोऽभिगेयः सुरऋषिविबुधैरर्च्चितो यज्ञवाटे ।
गत्वा गच्छन्प्रविष्टः कुचकलशमिषाद्दन्तिकुम्भाभिमानात्
साक्षान्मृण्मूर्त्तिदृष्ट्या कमपि गजमुखं चारु पश्यामि मुग्धः ॥८॥

चन्द्रोऽहं शैत्यसिन्धू रमनिवरमुखे कीर्णचूर्णामलांशुः
प्राणानामेकमित्रं मदनदहनकृत्प्रेमपात्रं प्रजेशः ।
व्योमालोच्याम्बुदाभं कवयितृसुधियः प्रोत्थितां मे सुलेखां
दन्तत्वेनाऽऽलपन्ति द्विपवरवदनस्येतिचित्तेऽद्भुतं मे ॥९॥

वातोऽहं गामितावान् भुवनगगनधृग्जीवजीवातुभूतो
ब्रह्माण्डेन्द्वग्निसूर्याम्बुदपृथिविलतापल्लवस्पन्दहेतुः ।
वह्नेरुज्ज्वालनेऽपां हरणविधमने त्रोटने वा तृणानां
पश्याम्येकेन विघ्नं हृतममृतकरोल्लासिनां दन्तुरेण ॥१०॥

यादोनाथोऽहमेकः सरिदुदधिमुखाः पूरयन्नस्म्यपो यश्-
चन्द्रेणैक्यं गताऽऽत्माऽनलखरकिरणप्रोत्थितोत्तापलोपी ।
तस्याह्लादैकहेतोर्ममभवनमिमे वासयन्त्येव दैत्या
येषां त्रैलोक्यराज्यं गजपतिवदनेनाहृतं विघ्नदण्डैः ॥११॥

स्थित्युत्पत्यन्त`तुस्त्रिभुवनविदितो देवदूतोऽनलोहं
ज्वाला मे सप्त मुख्याः सुहुतमृषिवरैः सप्ततन्तुं वहन्ति ।
तस्योल्लासं ममापि क्षणममृतकरप्रोल्लसद्भालपट्टो
धूमश्यामार्चिरादिप्रमुखमिषमितो विघ्नराजो विहन्ति ॥१२॥

वित्तेशोऽहं भवानीपतिसुहृदमरप्रार्थ्यमानाङ्घ्रिपद्मः
संपत्तीनां निधानं सुरऋषिविबुधैरर्चितो यज्ञवाहः ।
नेत्रोन्मेषान्सदैवानुसरतिकमला राजराजस्य तस्य
किन्त्वेकोऽयं ममाज्ञामपलपति कदाऽप्येकदन्तो गणेन्द्रः ॥१३॥

धर्मोऽहं प्राणियन्ता सदसदुभययुवकर्मणां तत्ववेत्ता
पश्यन्मित्राण्यमित्रानपि समतमयैवैकया सूक्ष्मबुद्ध्या ।
यावन्नो विघ्नराजः सुकृतकुकृतयोर्जीविनः शास्ति शास्ता
तावत्सर्वा ममेहाः प्रतिफलनविधौ नाप्नुवन्त्यर्हरूपम् ॥१४॥

मत्स्योऽहं शृङ्गबद्धावनितरणियुतस्तारयन्सूर्यजादीं-
स्तेषां त्रैलोक्यवर्ण्यातुलमतिविभवं वर्द्धयन् गौरवेण ।
मत्तो लब्ध्वाऽऽत्मविद्यां भुवनविजनने दत्तचेष्टाः प्रजेशा
दन्त्यास्यं पूजयन्ति प्रभितगुणगणं तस्य भावा जयन्ति ॥१५॥

कूर्मोऽहं देवदैत्यैरमृतभृतघटं प्रार्थमानैः सयत्नं
वासुक्युद्दण्डभोगावृतकठिनतनौ मन्दरे पात्यमाने ।
विस्तीर्णो योजनानामगणितमभितः क्षीरपाक्षोधिरोधी
जातो दन्त्यास्यविघ्नाहत सफलविधौ विष्णुना ध्यातमात्रः ॥१६॥

क्रोडोऽहं खुरलीनमेरुशिखरी दैत्येन्द्रमाह्वाययन्
वेदोद्धारकृदब्जसंभवनुतो यज्ञाऽऽत्मना संस्तुतः ।
द्राधीयान्स तु कोऽपि विघ्ननिवहो जातोऽस्य यस्मादसौ
दन्त्यास्याय नमश्चकार न कृतौ वेदेऽर्थदे वञ्चितः ॥१७॥

दृप्तदैत्यान्तकरणो नृसिंहोऽहं पराक्रमी ।
भालचन्द्रः पुरस्तान्मे शुण्डामास्फालयन्नभूत् ॥१८॥

अखर्वगर्वदैत्यराजयज्ञवाटमागमं
महेन्द्रसंस्तुतोऽपि खर्वदेहविप्रसंमतः ।
छलं विधातुमीहया स्वयं त्रिविक्रमोऽभवं
गणेन्द्रपूजनं नृपश्चकार नो बलिः किमु ॥१९॥

रामोऽहं रैणुकेयो नरहरिनिहितैर्दैत्यवर्गैः पृथिव्या-
मुत्पन्नैर्बाधितानां प्रबलभयजुषां प्रीतिकृत्सुप्रजानाम् ।
क्रौञ्चं शैलं विभिन्दन् अवनिपमुकुटोन्माथमेकः प्रकुर्वन्
मोहं याम्येकदन्तोद्धृतरदनविधौ कोऽयमासीत्स विघ्नः ॥२०॥

रामोऽहं राघवेन्द्रो दशवदनमुखं रक्षसां वंशमञ्जः
प्रोद्धृत्याजानुबाहुः पदहतलवणोऽकार्षमार्यैकराज्यम् ।
दन्त्यास्यस्त्वुद्वहन्तं जनकनृपतिजां मामयुङ्क्तान्तरायै-
र्यस्मात्सिंहासनारोहणमपि सुलभं नाभवत्सेन्द्रशत्रोः ॥२१॥

रामोऽहं रौहिणेयो बल इतिविदितो रुक्मिणो मानभङ्गः
कालिन्द्याऽऽलिङ्गिताङ्गः समदमदिरया कान्तिदेव्या स्वपत्न्या ।
कृच्छ्रे दुर्योधनात्स्वां सुमतिमवयवन् उद्वहन्कामपौत्रं
दन्त्यास्येनान्तरायैः सुखशयनकरैः कार्यकाले न्ययोजि ॥२२॥

कृष्णोऽहं समदेन्द्रदर्पदमनो गोपाब्जभूमोहकः
पूर्णं ब्रह्म दशावतारपदवीमुद्वास्य साम्नि स्थितः ।
द्रौपद्या वसनापहारसमये दुर्वाससः स्वागमे
शय्यास्नानजपादिकर्मनिरतो विघ्नेन संयोजितः ॥२३॥

अहं बुद्धः सपाखण्डः पाखण्डदलनेश्वरः ।
यज्ञविघ्नकरो विघ्नैर्मतोत्थाने नियोजितः ॥२४॥

कल्श्चहं भविता म्लेच्छवंशक्षयकरो भुवि ।
दुष्टराजोद्धृतौ यज्ञे द्विपास्यस्य प्रपूजिता ।।२५।।

इति गजवदनविदितशुभगुणगण-
शुकपितृऋषिमुखबुधवरविनुत ।
उपहर चरणमवनितलनिपतित-
मवसि हृदयमपि भजनकरण नृपु ।।२६।।

सकलकमलदलनयन गणपवर
वदनमदनहरतनय भवनकर ।
जगदघमपहर समलसरलनर
भवभयहरण सहजबलसहचर ।।२७।।

जय गजवदन गणपवर स्मरहर-
तनययजनकर नरफलवरकर ।
चरणकमलहतखलमलदलजल
जवनभजनभररभसहससधर ।।२८।।

शशधरवदन सहसफणधरसख
शमलंहरण हरसुत भव सकरुण ।
स्तुतिमिह तव यदि चरति गणपवर
भवतु न भुवि सतु वगणितजनमनु ।।२९।।

दिव्यालोकः

कीर्णा येऽनेकवर्ण जलधय इव खे भान्ति भासां विताना
नानालोकेश्वराणां रुचिभिरुपचिताः श्रीसहस्रोज्ज्वला ये ।
ये वात्युच्चैर्ध्वजाग्रात्सुभृशनिपतिता आशु शीर्णाश्च जीर्णा-
स्तूर्णं ये दिग्वधूनां मुखकमलमलं क्षालयन्ति क्षणेन ।।१।।

येषां सङ्गेन भानोरिव हि दशदिशो यान्त्यपूर्वं प्रकाशं
ये काशाकाशरम्यद्युतय इह परे वह्निवर्णाः सुवर्णाः ।
ये चञ्चत्कान्तिपूर्णा भवति जगति यैश्चारु शोभावसानं
सानन्दं मां विदध्युर्भवभयरहितं ते समन्तात्समग्राः ।।२।।

ये मिश्रा रश्मिमन्तो हरिहयहरयो यान्त्यसंमिश्रवेगा
भासां प्राक्सन्निपातादपरमिव दिनं ख्यापयन्तः प्रकृष्टम् ।
आकाशं वर्णसाम्याद्द्विषत मथखुरैश्चारु चञ्चच्चलाग्रै-
र्ये घ्नन्तः प्रक्षिपन्ति प्रथममयि भवेदद्य तेभ्यो नतिर्मे ।।३।।

येषां सन्देहमात्रा विनयति पुरुषं ये धियामप्यगम्याः
साम्यावासा न ये स्युस्तरलतररुचः कल्पनातुल्यवेगाः ।
कान्तिर्यैः संवितीर्णाऽद्वयमिह तनुते पूर्वपाश्चात्त्यसिन्ध्वो
राजन्तो भान्त्वसङ्ख्या मरुदुदधिबला वाजिमुख्या जयाय ।।४।।

वाहा ये वाहयन्तो हरिमिह निखिलं व्याप्नुवन्ति द्युदेशं
ये शेषं कम्पयन्ति स्वविभववशतो जन्तुवर्गं सदैव ।
ह्रेषा येषां प्रविश्य स्वयमधिकुरुते प्राङ्मनो दानवानां
वेगाद्ये वायुभक्षा इव नभसि चरन्त्यंहसां हानये ते ।।५।।

चर्वन्तो येऽपि रश्मीनमलहरिमणिश्यामलास्तन्वतेऽब्धीन्
सँय्यन्तुर्मातलेर्ये कथमिव भिदुरैस्तैर्भवन्त्येव वश्याः ।
येषां मुग्धाः कटाक्षाः प्रणतिपरजने पालयन्ति स्म धैर्य्यं
वीर्य्यं ते ख्यापयन्तु द्रुतममितरुचि मे प्रभुं देववर्य्यम् ।।६।।

यः सिद्धैः साध्यसङ्घैर्दिवि भुवि विनुतो ब्रह्मदेवर्षिपूज्यो
जन्मैतद्यत्र दृष्टे व्रजति सफलतां भक्तलोकप्रियो यः ।
प्राची साचीनमूर्तिर्भवति दिनकरस्येव यास्यानतेयं
प्राणाधिक्यं विदध्यात्स मयि रथवरो यः करोत्युग्रवेगम् ।।७।।

सूर्य्यस्येवोज्ज्वलाभा प्रसरति जगतां मूर्ध्नि यस्मात्सुदिव्या
धौता यत्कान्तिरेनं जनमपि तनुते शीतलं स्वप्रभावात् ।
त्वष्ट्रा यद्धीश्वरार्थं निजकररचितं हेममालावितानं
तद्विद्युद्द्योतरम्यं भवतु खलु मनोनन्दनं स्यन्दनं वः ॥८॥

कैलासस्यैकशृङ्गं परिवहति मरुद्वाजिवृन्दाब्धियानः
शोचिष्केशाङ्कवर्त्तीति वदधति जना विभ्रमं यान्ति यस्मिन् ।
यत्ताराणां सहस्रैरुपखचितमभूद्धर्मवद्दिव्यदेहं
देवार्हैर्गन्धमाल्यैर्महिततनु भवेत्स्यन्दनं नन्दनं तत् ॥९॥

अक्षं यस्याक्षयं तद्रुचिररुचिमयी बन्धुवद्बन्धुरेषा
भाभिर्विद्युल्लतानामुपरचिततया ताम्रवर्णं दृढं यत् ।
यस्यैकैकं सुचक्रं प्रतिफलितविभं प्रातिचक्रीं श्रियं स्वां
नो मुञ्चन्त्येकरूपां शिशुरिवजननीं स्निह्यतोमङ्कवर्ती ॥१०॥

आह्लादो यत्र दृष्टे जनमनसि विधोः सूर्य्यवद्भास्कराभः
शच्या नाथस्य लोकेश्वर पुरुषवरस्याप्यधिष्ठानमेकम् ।
यो लक्ष्म्याः प्रेमपात्रं परिभवति जगत्तेजसा स्वेन दृष्टः
स्वान्ते स्निग्धे मम स्यात्कृतवसतिरसौ सद्रथश्चित्रशोभः ॥११॥

कान्तीनां सन्निपातं तुमुलमिव गिरां मञ्जुलानां श्रुतीना-
मामोदं प्राणपुञ्जे रसनमपि परं तत्सितायाः परस्तात् ।
स्पर्शं पीयूषतुल्यं सपदि वितनुते भक्तवर्गावनार्थं
यो देवेन्द्रं च बिभ्रत्स्वशिरसि भवताद्भूतये मे रथः सः ॥१२॥

यः शृङ्गारैकरम्यः प्रभवति करुणो वीरभावेन भक्तान्
त्रातुं रुद्रोरुवेगः समितिरिपुकुले दारुणं कर्म कुर्वन् ।
स्मेरास्या यस्य भक्ता विजहति जगतां जिह्मबीभत्सतां च
श्रेयोऽसौ मे रथाग्र्यो वितरतु पुलिनं पापसिन्धावुदीर्णम् ॥१३॥

दूराद्यो बुद्धिवेद्यः क्षणकलिलमतेदृष्टच्युपान्तेऽधिरोह-
न्नाकाशं भाति चुम्बन्निव किरणचयैर्नैकवर्णैः पुरस्तात् ।
चित्रो यो दन्तिवर्य्यैः कमलकुमुदनीह्लादिभिश्श्वेतरूपै-
रानन्दं मे दधातु प्रतिपदमभितः सध्वजोऽध्वर्युमित्रम् ॥१४॥

अत्युच्चैरम्बरं यो विशति पटरुचा पूजितोत्तालमूर्तिः
कीर्तिर्यस्मिन् गजानां मदमुदितवतां लिख्यते युद्धशौण्डा ।
दूराद्वल्लचक्र्कदीप्तोऽप्यतिरुचिररुचिः शीतलः सन्निकर्षाद्
दण्डं स्वं दर्शयन्स्तादिह निखिलजनश्रेयसे सोऽग्र्यकेतुः ॥१५॥

गौरी यस्य प्रभा खं विशति दिनपतेः सारथेस्तुल्यमूर्ते-
रुल्लासानां निदानं भवति परिजने योजने चापि भक्ते ।
भूयोभाग्यं सुदर्शं सुरपतिवचनाह्लादिताङ्गं प्रकामं
नामं नामं विनीये स्वमिह बत शिरोमातलिं तातकल्पम् ॥१६॥

यश्चन्द्राह्लादिमूर्तिर्दिनकरमहितश्रीप्रभ.वाभ्युपेतः
स्वर्णाद्रिस्तुल्यकान्तिर्नयनचयरुचाऽऽकाशवत्तारकाभिः ।
नेत्रश्मश्रवैकमत्यात्परिलसति तथा वाससी यो वसानः
शोभाया एकपात्रं जयतु हरिहयः स स्वतेजाः सुराजा ॥१७॥

आशातीतं जनानां भवति खलु हरेर्दर्शनं यस्य राज्ञो
देवानां सन्निधातुस्त्रिभुवनविजये भूतसङ्घेश्वरस्य ।
यो योगी योगिनां स्वं प्रविशति पुरतो मायिनां यो हि मायी
निध्यातः स क्षणार्द्धाद्भवतु मम पतिर्भूतये भव्यमूर्तिः ॥१८॥

वैरिञ्चे यः प्रपञ्चेऽपरमनुमनुते न स्वतुल्यं हि राजा
जारानूचानमुख्यं जनमिह करुणामूर्तिरालोकयेद्यः ।
यस्यैते सुप्रभावान्न खलु बत नराः सन्त्यजन्त्येव धर्मं
धर्मं बुद्ध्वा स मामप्यमलमतितयालङ्करोत्वाशुदेवः ॥१९॥

न्यक्कृत्वा चन्द्रिकां यो दिनकरकिरणान्भाति रम्यप्रतापः
पापस्योद्धूलनेन स्वमिह परिजनं त्रातुकामःसकामः ।
मूर्तिः सेहेश्वरस्य प्रभवतु भवतां भूतये सा यदीयं
श्रेयो हीनस्य हेतोर्न भवति पुरुषस्यापि चक्षुःसहस्रम् ॥२०॥

यस्येच्छैवेश्वरेच्छा विधिवशमिलिते यत्र भूतिर्विभूति-
र्यो भावानां स्वभावो नियमयति जगद्यः स्वसत्ताधिमात्रः
यन्नीतिर्वीतरागेऽप्यखिलसुरपतेर्विघ्नता नो कदापि
प्राणानां बाणशय्यामपि हि स हरतु क्षत्रधर्मैकवीरः ॥२१॥

इष्ट्वा यं देववर्य्यं क्रतुभिरवनिपाः स्वर्गमिद्धं प्रयान्ति
प्रेम्णा कुर्वन्ति यस्यार्च्चनमिह मुनयः पूतचित्ताः सदैव ।
ब्रह्मर्षीणामुपास्यः परिजनमभितो देवराजर्षिमुख्यान्
यो दृष्टचैवानुगृह्णात्यखिलभुवनपः श्रेयसे वः स वै स्तात् ॥२२॥

देवा यस्यानुयात्रां यमवरुणमुखाः सर्वदा कुर्वतेऽमी
यस्तैर्युक्तैर्नियुक्तैर्जगति वितनुते धर्ममात्मानमेव ।
आदित्यस्येव यस्योदयमिह मुनयः पुण्यकार्यार्थमिच्छ-
न्त्येष प्रीणातु युष्मानमरपतिरलं भूतिकामान् सुभूतिः ॥२३॥

यस्यैवैषा नितान्तं नयनदशशती निर्निमेषां विचित्रां
रम्यां पुष्णाति शोभां वपुषि सरसिजानीव साधु द्युनद्याम् ।
अभ्राभे शारदे वा नभसि भजति खल्वृक्षवृन्दानुकारं
कारं कारं स्वमायां जगदुपरमयञ्छ्रेयसे सोऽस्तु देवः ॥२४॥

यत्कान्त्या लुप्यतेऽन्यज्जगदिदमखिलं चक्षुषां चारु संख्यां
यस्यर्षीणाङ्कदम्बः प्रथयति पुरतोऽमात्यवर्गः स्तुवन् सन् ।
यस्यानल्पां कृपां नालभत बत नरः पुण्यलेशावसाने
मां नैकाद् दुःखवर्गाद्वहतु रुचिरतां तारयन्स्वः प्रभुः सः ॥२५॥

आदित्योद्दामधामा कनकरुचिरतां ख्यापयन्यो ललाटे
गौरे मेरोर्विशालं शिखरमिव बिभ्रात्युष्णरश्मेरनन्यः ।
यस्यैतच्छासनार्हं जगदिदमगदं मोक्षमार्गेऽपि भिक्षो-
रेष श्रेयांसि तुभ्यं मुकुटमणिरलं पीतवर्णः प्रदेयात् । २६॥

यस्मिंस्तारासहस्रं दिनकरनिकरो यत्प्रभाक्षिप्त आराद्
वह्नेराह्लानदं यद्विमलमणिगणैश्चित्रितं भूषयत्तम् ।
चश्चच्चन्द्राभकान्ति प्रविरलसुमनोवृन्दकर्षिप्रभावाद्
भावानन्दाय तत्स्यादमरपतिपरिद्योतितं दिव्यवर्म ॥२७॥

स्मेरास्यो यो न संभावयति बत पुनर्मां पुरा चिन्तितः सन्
यस्येच्छामीश्वरेच्छां बत बत मनुते मे मनः प्रत्ययेन ।
मामेनं न्यूनबुद्धिं प्रभवति बलिनं कर्तुमस्यानुकम्पा
तेनोच्चैरस्य पादावहमिह बिभृयामेकतातस्य मह्यम् ॥२८॥

यत्त्वष्टुर्ज्ञानशिल्पं सुकृतमपि मुनेर्वृत्रहन्तुश्च तेजो
यस्मिन्नेकत्र दण्डो निखिल इव धृतो गीष्पतेर्बुद्धिपूर्वः ।
दैतेयानां कदुष्णै रुधिरपरिवहैस्स्नातमूर्त्युग्रमिद्धं
वज्रं तद्भीमघोरं स्मृतमिह निखिलं स्फोरयेत्पुण्यजातम् ॥२९॥

स्मृत्वा यल्लोहिताक्तामलकठिनमुखं तीक्ष्णतीव्रोग्रधारं
दैत्यस्त्रीगर्भपातोऽसुरपतिकुमुदश्रीविकाशावसानम् ।
संमोषः सूर्यवह्निप्रमुखसुतपसां तेजसां यत्र दृष्टे
वज्रं तद्भीमघोरं प्रविशतु हृदयं त्राणहेतोर्नराणाम् ॥३०॥

ऐन्द्रं चक्रं करालं रिपुविहतिकरी चार्वमोघा च शक्ति-
र्दीप्ते उग्रग्रहाभे परिगतमशनी वज्रमिद्धं यमारात् ।
दीप्त्या कान्त्या श्रिया वा सममिव बहुधालङ्कृतं भूषयन्ति
प्रज्ञानं ह्रीः स्मृतिर्धीर्मतिरपि कुशला यद्वदीशानमूर्तिम् ॥३१॥

चश्वच्चन्द्राभकान्तिर्दिशि विदिशि सरत्युद्गता यस्य कीर्ति-
र्यस्माल्लोके महान्तं परमनुमनुते मे मनो नापि कश्चित् ।
यः कृच्छ्रात्प्राणिवर्गं निखिलमपि सदा तारयत्यल्पभाग्यं
देवः कारुण्यसिन्धुस्त्रिभुवनविजयी जिष्णुरौदार्यबन्धुः ॥३२॥

यस्माद्धर्मो द्युलोके निखिलपरिचितो मर्त्यलोकेऽपि सिद्धो
यं देवं वेदमूर्तिं प्रभवमिह जनाः संस्तुवन्त्यद्य यज्ञैः ।
यस्यैते वीतिहोत्रादय उचितचरा लोकयात्रां वहन्ति
प्रेमासीमास्तु तस्मिन्मम कलुषमतेर्देवराजे महेन्द्रे ॥३३॥

यं देवं वृत्रशत्रुं शरणमुपगता ब्रह्मदेवर्षिवर्य्या
धर्मो यस्यास्याधिमात्रः श्रवणपुटगतैर्वेदवाक्यैरधीत्यः ।
मूर्तिर्यस्यास्य चित्ते न चिरपरिचिता यस्य बोधेऽस्म्यबोधो
धाता नेता विनेता भवतु मम जनस्याल्पबुद्धेर्वृषाऽयम् ॥३४॥

कैलासः सारहीनो व्रजति बत रविर्मुक्तविश्वः सदश्वै-
र्दृष्टे यस्मिन्विभेदो व्यपगत इव मे घस्रराव्योरुपान्ते ।
चक्रं चक्रं यदीयं परमनुमनुते तत्तथैव स्वकीयं
वक्रं मे कर्ममार्गं स्वयमयमरुणत्क्षिप्रवेगो रथाग्र्यः ॥३५॥

उच्चैराकाशचुम्बिध्वजममरपुरीह्लादनं नन्दनं मे
सिक्तं यच्चन्दनाद्भिर्हृदि सुधृतमपि स्कन्दनं शात्रवाणाम् ।
आचन्द्रार्कप्रकाशं यदिह खलु मतं तस्य सङ्क्रन्दनस्य
स्यात्तस्मै वन्दनं मे मनसि गिरिवपुष्याश्रितं स्यन्दनाय ॥३६॥

आद्यं भागं यदीयं निखिलमखमुखे कल्प्यते यायजूकै-
र्यो हूतस्त्वध्वरेषून्मिषति शुभकृते लोकसंप्रत्ययार्थम् ।
यस्मिन्नाश्वस्य सर्वाः प्रकृतय इह संतन्वते पुण्यकर्मा-
ण्यस्मै कस्मैचिदस्तु प्रतिपदमभितो मे नमस्यापि तस्मै ॥३७॥

शर्मायं मे प्रदिश्यादमरपुरपतिर्दानवानां निहन्ता
शत्रुर्वृत्रस्य देवो विहितशुभमतिर्धर्ममार्गे नियन्ता ।
यन्तॄणामिन्द्रियाणां प्रभवति बत यो लोकमान्योरुशक्तिः
स्वीकर्त्ता पूजितस्य श्रियमपि तनुतादेष शेषोरुविद्यः ॥३८॥

चन्द्राभा यस्य शोभा दिनकरकिरणैः पूजितो यत्प्रतापो
विष्णोस्तुल्या यदीया त्रिभुवनभवने भासते नैकधा श्रीः ।
नीतिः काव्यस्य पूज्या धृतिरचलपतेर्गीष्पतेर्यस्य बुद्धि-
स्तस्मै लोकेश्वराय प्रणतिततिरियं सर्वदेवेश्वराय ॥३९॥

यस्मिन्नेकत्र सर्वं सुरपतिनिकरेणर्पितं स्वस्वतेजो
जातोऽदित्या मरीचेस्तनयत इह योऽनल्पतेजा महात्मा ।
यस्याज्ञायां सदेदं त्रिभुवनमखिलं विग्रहः श्रीविराजः
स्थाने शच्याः पतिर्यः प्रभवतु भगवानेष विष्णवग्रजो वः ॥४०॥

धर्मो यस्यैव राज्ञोऽखिल इह नियमः संयमो यो यमस्य
प्राणा इन्द्रस्य यस्य प्रणयभरममी सर्वदोपासतेऽस्य ।
चश्चच्चन्द्रोरुकान्तिः कपिल इव पुरा ज्ञानविज्ञानहेतुः
केतुर्यः पावनानामवनमुपचरेद्भक्तवर्गेऽयमीशः ॥४१॥

विष्णोर्वीर्य्यस्य वासस्त्रिपुरविधमितुर्यः क्रमो विक्रमस्य
प्राणाधातुस्त्रिलोक्या उदरमधिवसत्प्राणिनामीशिता यः ।
यस्मै देवा नृदेवाः क्रतुषु शुभकृते कल्पयन्ते हवींषि
श्रान्तेऽस्मिन्मानसे मे भवतु सुखकरी शान्तिरस्य प्रतापात् ॥४२॥

कस्मैचिन्नाम तस्मै प्रणतिततिरियं वर्द्धतां मे सदाऽस्मै
यस्मै यज्ञेषु भागः प्रथम उपधृतो यायजूकैः परस्मै ।
यो भावानां विनेता भव इह भविनां साधु नेता प्रतीता
यत्कीर्त्तिः केवलैव क्षिपति रिपुगणं दूरमीशानमूर्त्तिः ॥४३॥

चन्द्रः सूर्य्योऽथ वह्निर्यमवरुणमुखाः केचनान्येऽपि ये ये
देवाश्चण्डोरुवीर्य्या जगदुपकृतये सन्ति युक्तानि युक्ताः ।
तेषामात्मा त्वमेको हरिरिव जगतामिन्द्रियाणां मनोवत्
संस्कर्त्ता संविधाता प्रभवसि भुवने साधु निस्तन्द्रमूर्त्तिः ॥४४॥

कीर्त्तिस्ते प्राणिवर्ग्गं स्पृशति जनमपि क्षुद्रमीशानमूर्त्तेः
नीतिः संसाररक्षाकृतनियतमतेः साधु पुष्णाति साधून् ।
श्रीर्ह्रीर्धीस्ते समग्रा त्वमसि गुणनिधिः शीलपीयूषवर्षः
तर्षस्ते दर्शनान्मेऽपसरतु भगवन्नेष केशे गृहीतः ॥४५॥

सर्वस्माद्भागभाक्त्वं प्रभवसि भुवने कर्मणां प्रेरकः सन्
धर्माधर्मप्रवृत्तें रविरिव तमसो नाशवृद्ध्योर्नियोक्ता ।
दण्डो यस्ते स राज्ञो नृषु पटुमतिना नीयते वै यमेन
त्वं सेक्ता शुष्यतोऽसि त्वमिह जनपदं ह्लादयेश्चन्द्रतुल्यः ॥४६॥

त्वत्तो रक्षा हि लोके भवति जनधने जीविते चाप्यमूल्ये
जीवा जीवन्ति लब्ध्वा कथमपि करुणं ते कटाक्षं कदापि ।
केषां न त्वं नियोक्ता ऋषिविहितमतिः कर्मणामिन्द्र विश्वे
दृश्यन्ते ये त्रिलोक्यामसुरसुरनरा जङ्गमस्थावरश्च ।४७॥

बालः शेते सुखं स्वे पितरि धृतमतिस्त्वय्यसौ जीवलोकः
साफल्यं यत्र न स्याच्छिशुजनविहृतौ संभवत्येतदिन्द्र ।
किन्त्वेतेषां मुनीनामपि ऋषिविदुषा सूक्ष्मबुद्ध्यावधार्यं
त्वं निर्णीतः पिताऽद्योद्भवसि कथमहो साध्वविश्वासपात्रम् ॥४८॥

माता बालस्य मन्तून्विगणयति परं त्वं बुधस्यापि राजन्
साऽशक्ता त्वं प्रभावी ह्रियमनुमनुते सा त्वमिन्द्रः परात्मा ।
त्वत्तः सर्वस्य पुष्टिस्त्वमिह जनसुखे दत्तचित्तोऽसि शक्र
त्वामीड्यं ये नमस्यन्त्यखिलगुणगणं ते हरिष्यन्ति सर्वे ।४९॥

विद्यानां दानहेतोर्हितकरणतया तीर्थरूपो गुरुस्त्वं
भ्राता मित्रं च गोप्ता भवसि मम सदा त्वं त्वदेकायनस्य ।
सर्वस्वं त्वं ममासि त्वमिव न जगति स्यात्परः कोऽपि बन्धुः
दुःखोदर्काद्भवाब्धेस्तरणिरिव जनं तारयेद्यः कृपालुः ॥५०॥

आर्षं चक्षुस्तवैव क्षणमपि रमसे नावने वा श्रमस्ते
सर्वे जीवा वशे ते पशुवदुपगताः सूत्रिता दिव्यदृष्टेः ।
त्वत्तस्तेजो बलं ह्रीः प्रसरति सुधियां श्रीस्त्वदेकायनास्ते
धैर्यं वीर्यं त्वमेव प्रभुरसि जगतो हीन्द्र एकः स्वराट् च ॥५१॥

श्रेष्ठो राजा महान्यः प्रभवति भुवने स स्वराट् पूजितत्वाद्
भूत्वा स म्राड्विराट् स्यात्स्वविभववशतः सार्वभौमः परस्तात् ।
दृष्टो लोके क्रमो यस्तव कुशलतयोन्मूल्यते स त्रिकालं
भूमीन्द्राणां विराट्त्वं त्रिभुवनभवने भासि सम्राट् स्वराट्च ॥५२॥

संपाद्यात्मानमिन्द्र त्वमखिलभुवनेऽसि स्वराट् ते विराट्त्वं
शब्दाः सर्वेऽपि तुभ्यं न खलु समुचिता नात्मने पूजनीयाः ।
दिव्यानां चक्षुषां ते भवतु दशशती नेक्षसे मां कृपालुः
सर्वोत्कृष्टा कृपा ते जन इह निखिलो भाति यल्लाभमात्रात् ॥५३॥

कोऽहं मे का गतिः स्यात्स्तवकरणविधौ ते प्रभोर्यस्य देवाः
शक्ता गातुं यशो न स्वयमपि धिषणस्तावको वाऽप्यथर्वा ।
वीणामादाय यस्य स्तुतिमथ तनुते नारदः शुभ्रकीर्ते-
रार्चीकिश्चात्रिरुर्वोऽपर इह ऋषयो यं च सर्वे स्तुवन्ति ॥५४॥

ब्रह्मेशानौ गुरू ते गुरुरपि धिषणः कार्यकारी यमादि-
स्ते राज्ये चन्द्रसूर्यौ त्रिभुवनभवने कुत्र दीपाविवास्ताम् ।
प्राजापत्यं च चक्षुस्त्वयि निखिलमपि प्रातिदायि प्रमाणं
प्रेम्णा त्वां देवदेवं गुणमयमखिलं वीक्षते सा क्षमाऽपि ॥५५॥

चन्द्रः सूर्य्योऽथ वह्निस्तव शरणममी सर्वदैवोपजीव-
न्त्यन्ये ये पाशिमुख्या यमधनदमुखा वायुमित्राः सुरेशाः।
येषां सत्त्वेन जीवत्यखिल इह जनो ये जगद्बिभ्रती मे
नागः कीटोऽवरो वा त्वरितमपि भवेद्यत्कृपातस्तु जीवः ॥५६॥

सामन्तानाममीषां तव जगदखिलं वर्तते स्वाधिकारे
दृष्टिस्ते तान्महत्वाददधिचरति सदा तेन शङ्काविमुक्ताः।
तुभ्यं नत्वा जनस्तानपि तु वशगतान्मन्यते तत्कृपा सा
यस्माद्यस्माच्च भूयो नृपतिवर भवान्सर्वदेवाकरोऽस्ति ॥५७॥

मन्ये पापं कृतं स्यात्तव शरणगतेनामुनाच्छद्मनैवं
चाञ्चल्याच्चित्तवृत्तेस्तव न न विदितं स्यात्सुरेन्द्रस्य राज्ञः।
दण्डो जागर्त्ति चायं तव निपुणमतेः सोऽस्मि सद्यो विनेयः
पूतात्मीभूय पश्चात्कृतसुकृतमतिर्भृत्यवर्गे विधेयः। ५८॥

पापात्माऽयं नराणामधम इति यथा ते कृपादृष्टिरस्मिन्
पाता शिक्षाप्रदाता प्रभवसि हि तथा पोषितुं मातृतुल्यः।
पार्श्वे ये संवसन्ति स्तुतिमुपचरितुं नेह शक्नोमि तेषां
सर्वेयस्मात्तपःश्रीविभवसमुदिता मोदितास्त्वत्स्तवेन ॥५९॥

तेषां कुर्यात्स्तवं कः प्रविदितमहिमा ब्रह्मदेवर्षिवृद्धा
ये सन्तन्वन्ति लोके तप इह परमे तत्र यस्मै तपस्या।
राजर्षिर्वा महर्षिस्तव सुपरिचितो नायकः स्यान्न भूयो
वाचां पारेमहित्वस्त्रिभुवनभवने प्राग्र्यधर्मेश्वरस्य ॥६०॥

शास्ता योक्ता नियोक्ता त्वमसि विधिशतैरत्र भूस्वर्गभागे
वेद्यं ते नास्ति किञ्चित्तवव वचनपरा धातृकर्तृप्रवर्य्याः।
व्याप्तं सर्वं त्वयैव त्रिभुवनमपि यत्स्थूलसूक्ष्माधिपत्वात्
मन्ये सत्यं महेन्द्र त्वमसि ऋषिवरः साधु वेदावदानः ॥६१॥

अज्ञानाच्छैशवाद्वा हतसुकृतगतिर्हीनबुद्धिर्जनोऽयं
यन्नाथ त्वाममत्त्वा नरपतिमभितो नेकधैवापराधी ।
तत्तस्य क्षम्यतां चेदविदितमहिमास्याल्पचापल्यमूलं
शूलं तन्मात्रकेण व्यपगतमधुना स्याद्धृदो दुर्हृदो मे ॥६२॥

संमुग्धो माययायं यमनु विभुममुं लोकमामन्य मोहा-
दुद्भ्रान्तो वीक्षते दिक्ष्वपरमपि पुनः प्राप्तुमेतस्य दर्शम् ।
तस्यैवैषा ह्यनीतिर्न खलु विकुरुते यत्सुखेऽल्पेऽपराधे
राधेयं दानशक्त्या जितमनुमनुते योह्यसौ देवदेवः ॥६३॥

आचन्द्रार्कं नृदेवाः शरणमुपगता यस्य साम्ना जयन्तो
यस्याश्रित्यैव वीर्यं क्रतुभिरुपहितैर्याज्ञिका वीरवर्याः ।
यस्याम्नायेन लोकः कुशल इह भवेत्साधुवृत्तोऽस्त्युदारः
संसारासारतां यो यवयति भगवानेष शेषेस्तु मित्रम् ॥६४॥

प्रामाण्यं यस्य सर्वैरविकलमुदितं गृह्यते संप्रयोगा-
द्बुद्धेः पारं गतो यः प्रभवति जगतामेकवीरोऽवनाय ।
यस्मै नादेयमस्ति स्वजनसुखकृते किञ्चिदेकान्ततोऽपि
प्राणास्तस्मै श्वसन्तु प्रबलतरममी द्वैतचिन्ताविमुक्ताः ॥६५॥

यो मायी माययैवोद्धरति जगदिदं मोचयत्यल्पभाग्यान्
मुक्तेर्योग्यान् प्रकुर्वन् न खलु पथि दृशां यश्च तत्त्वेन कस्य ।
द्वैतं यत्र प्रणष्टं हृदयमभिभवेद्ब्रह्मरूपो य इन्द्रः
कल्याणानां निधिः स प्रणिहितमनसाध्येयतामस्य यायात् ॥६६॥

यः सर्वं सर्वतश्चोद्भवति विभुवरः सर्वदा सर्वथा च
प्रेष्ठा पुण्येषु साध्वी गुणगणमहिता दृश्यते यस्य वृत्तिः ।
उत्कर्षाय प्रदृष्टा जगति शुभकरी यत्परीक्षा समासाद्
यो मुख्यः सर्वलोके विपदवहतयेऽसौ समर्थो महेन्द्रः ॥६७॥

१८

वर्षं गृह्णन्विमुञ्चन्नवति जगदिदं यस्तपन्भास्करस्थो
वायुर्यो यश्च वह्निर्निखिलमिह तथा प्राणिनां जीवनं यः ।
पृथ्वी पृथ्वी यदीया प्रथयति महिता चन्द्रिकां यस्य साध्वी
वृत्तिः सर्वत्र तुल्या स्वपरविनयने भक्तिवश्यः स वोऽव्यात् ।।६८।।

यद्भुक्तान्वीर्यतो न क्वचन बत परो बाधितुं स्यात्प्रभावी
माया सृष्टैव येनावति जगदखिलं मोहयन्ती समस्तान् ।
विष्णोर्यो बाहुरग्र्यः सुरनरखगगो भोगिगन्धर्वदैत्या-
नुच्चैः प्रामाण्यमिष्टं भजतु मम हृदोऽसावतुल्यः शचीशः ।।६९।।

भर्त्ता वज्रस्य गोप्ता त्रिभुवनभवने योऽसिते संवसानो
भासन्ती वाससी स्वे भजति सदसतीं संविभज्यैव विद्वान् ।
यो वीरोल्लासमूर्तिर्व्रजति गजवरं शुभ्रशैलेन्द्रकल्प-
प्रख्यं प्रौढासनेन प्रबलतरमय प्रारुहन्स श्रिये स्तात् ।।७०।।

यस्याभावे न किञ्चित्सुखमिह न धृतिर्नापि बुद्धिर्न विद्या
न ह्रीः श्रीर्वा भजन्ति प्रियमपि पुरुषं विष्णुमग्र्यं महान्तम् ।
यत्सारं देहिनां प्रोल्लसति शुभमयं लभ्यते यत्र लोके
तस्यैकस्यौजसो यो भवनमिह भवेच्छ्रेयसेऽसौ महेन्द्रः ।।७१।।

यस्यासिर्मुष्टिसङ्गक्षणविमलतनुः शेषकल्पो विकोशः
शिक्षामात्रप्रतीक्षो रिपुमसुरकुलं वीक्षते रश्मिभिः स्वैः ।
यस्योदारैव मूर्त्तिर्नयनदशशती चारुचित्रा महेन्द्रं
कस्तं स्पर्द्धेत लोकेऽखिलसुरमहितं धर्मराजाधिराजम् ।।७२।।

देवानां यो हि देवः करुणरसमयो वीरमूर्त्तिः प्रभावी
सर्वत्र न्याय्यरक्षाधृतमतिरखिलं जीवलोकं हि पुष्णन् ।
यः सौम्यः सोमपानामपि नियमयिता वेदविद्यावरिष्ठो
ज्ञानं सञ्चारयन्स्ताल्लसदखिलजनश्रेयसेऽसौ बलारिः ।।७३।।

यं देवं देवकन्यास्तुतिभिरभिनुतं पारिजातस्य पुष्पैः
प्राच्च्यैवानेककामान्हृदयपरिगतान्प्रार्थयन्ते हि नित्यम् ।
एकं यं स्वानुकूलं दिवि भुवि महितं साधु विश्वे लषन्ति
श्रीमन्तं तन्नमामो हरिहयमनघोद्भासिधामानमेकम् ॥७४॥

स्यादेषा कर्मणां मे ह्यशुचिपरिणतिर्द्वैतभावोपरक्ता
चेद्बुद्धिर्वीक्षते त्वाममरगुरुमहोनिर्मलं शान्तमेकम् ।
विज्ञानात्मा न भेदं प्रथयति कुशलोऽप्यण्डभाण्डे समस्ते
पाषाणाल्लोकपालावधि समधिकरोत्येव यः सर्वमूर्तिः ॥७५॥

स्वान्तं चेत्कल्मषं मे प्रभवति भगवँस्त्वत्परीक्षां न तर्तुं
कारुण्यं दर्शनीयं सततमपि यदा निन्दितं नीतिमद्भिः ।
नो चेदुल्लासमेनं हिमगिरिगरिमं सार्थकं भूरिभाग्यं
प्रत्येष्याम्येव नाहं परमपरिणति प्रार्थयन्स्वार्थहेतोः ॥७६॥

चन्द्राङ्के कौमुदी या विकचसरसिजे कान्तयः केसराणां
गङ्गायां फुल्लपद्मं हरगिरिशिखरे शम्भुमूर्तिः सुरम्यः ।
तत्सर्वं न्यूनमूनं प्रहरति हृदयं चिन्तनाद्यस्य सम्यक्
तस्मै रम्यार्च्चिषे मे नम इदमनघं त्वत्स्मितायामरेन्दो ॥७७॥

यत्प्रस्ताराद्दिगन्तः किरणचयचितं नैकधा भासते यत्
वर्णानां सन्निधानं परपुरुषकृतं सुव्यवस्थं च यस्मिन् ।
ऊर्ध्वं गच्छद्गुरम्यं परममनुगतं शोभतेऽष्टाङ्गवद्यत्
तच्छृङ्गे पर्वताग्र्यानपि विदलयतस्तीक्ष्णटङ्कारकाले ॥७८॥

वल्मीकाद्यस्य शोभा विसरति नभसः प्रान्तभागेषु मग्ना
यत्साहाय्येन रामो दशमुखनिधने पाटवं सूद्धार ।
यच्चैतस्यैव नाम्ना प्रथितमिह जगत्युज्ज्वलालोकहेतो-
र्वामाङ्गे यस्य कान्तिस्तनुमनुकुरुते दक्षिणे वज्रलग्नाम् ॥७९॥

यज्ज्येष्ठं सद्धनुर्भ्यो महितमिह यतो दैत्यवृन्दस्य भीति-
र्वद्ध्वः सौभाग्यकामाः यदतिरटन्त्येव रक्षोऽसुराणाम् ।
यद्धेतोर्भोगिकल्पा ज्वलदनलरुचो ब्रह्मदण्डोग्रकायाः
स्निग्धा ऋज्वायताङ्गा निशितमुखशराः शायितास्तूणशय्याम् ।८०॥

यन्नामापि ग्रहीतुं न खलु भुवि मतः श्रेष्ठवत्कोऽपि लोकः
कौशेयं यस्य रुग्भिर्विनिहतमिवसत्प्रान्तदेशे विलग्नम् ।
यस्मिन्नक्ष्णां कचानां कवचमुकुटयोस्तारका हीरकाणां
भासः संयुज्य भान्ति प्रतिफलितजुषोऽप्यङ्क देवाङ्गनानाम् ॥८१॥

यद्ध्वान्तध्वंसदक्षं क्षपितरिपुचयं क्षालिताशेषपङ्कं
देवा यस्माज्जयन्ते रिपुरुधिरकणाकीर्णदेहाः प्रकामम् ।
यच्चाप्येकस्य योग्यं श्रुतिशतशिरसः पूरुषस्याङ्गलग्नं
नित्यं तत्सन्नमामोऽस्त्रवरमिदममी गौरवे मेरुकल्पम् ॥८२॥

तूणी सैकाक्षया मे क्षपयतु दुरितं यामनेकेऽपि वीरा
बाह्वोर्वेगेन तर्तुं न खलु रणचणाः शक्नुवन्त्येकचित्ताः ।
विस्तीर्णभोगशालिन्यपि मुखकमलात्सङ्कुचन्तीह्यधोऽधः
सेवादत्ताशया या बिबुधवरपुरैवागता नागभूर्वत् ॥८३॥

सिंहोन्नताशतकम्

व्यालुम्पती शशिकलां तडिदच्छकान्त्या
कादम्बदम्भदलनीं रसवर्षतुष्टाम् ।
कादम्बिनीशितिनिचोलसमावृताङ्गीं
कां प्रावृषं ननु मयूर इवारटामि ।।१।।

पङ्के सजन्नपि शिशुः कलुषं शरीरं
मात्रे रुदन्निव हठाद्विनिवेदयानः ।
नोपेक्ष्यते यदि शिवे जगदम्ब मह्यं
कर्तव्यमादिश गृहाण दृढां प्रवृत्तिम् ।।२।।

सत्यं शिशोर्जगति मातृशतानि मातः
सन्त्येव पोषणपराण्यनुरक्तहृन्दि ।
सङ्क्षालयन्ति मलिनानि वपूंषि किन्तु
पङ्कावलिप्तहृदयस्य न काऽपि माता ।।३।।

मातस्त्वया न सुलभः पतितोऽपि सूनु-
र्यस्मादनुक्षणगतिर्भविता विदूरे ।
बह्व्योऽपरा जगति ताः स्पृहयन्ति तस्मै
भूयोऽङ्कमेत्य पतिता कलुषे स यासाम् ।।४।।

मातः परे तव समीक्ष्य कृपामपारां
भक्तेषु भिन्नमतयः करुणामयी त्वम् ।
ताः स्नेहमय्य इति भेदकमाप्नुवन्तो
भक्तिं परामपि न तासु न दर्शयन्ति ।।५।।

किन्तु प्रसन्नमतयो बिबुधा भवानि
स्नेहः परं विवशतेति परीक्षमाणाः ।
बुद्ध्वा परां तव दयां त्वयि संसजन्तस्
ताः स्विद्यमानहृदया दययाऽऽद्रियन्ते ।।६।।

मातस्त्वदीयकरुणास्मरणी चकासत्
सञ्चारसञ्चितविचारयुतो विचिन्वन् ।
स्नेहानुकम्पनघृणादिमुपाधिजातं
जीप्सञ्जिहासति जहात्यथ मोमुदीति ॥७॥

आर्येऽल्पकल्पलतिके तव पादमूलं
लब्ध्वा जनः किल परश्च न बन्ध्यलाभः ।
आपद्यतां विषमताऽपि कथं स्वराष्ट्रे
स्वस्वानुकूल्यकलनैव नृणां समेषाम् ॥८॥

यद्वा नृणां स्वहृदयप्रतिमानमल्प-
मादर्शकल्पलतिके फलदात्मनीनम् ।
नैर्घृण्यदोषकलनैकपटुत्वभाजा
वैषम्यमप्यलमलङ्कुरुतां मुखानि ॥९॥

आदर्शदर्शनमपैतु सुखं महेशि
संसर्गि सङ्क्रमशुचि प्रतिबिम्बि बिम्बम् ।
बिम्बान्तरं तु निपतद्व्यतिसंमुखीने
तस्मिन्कथं प्रतिफलेन्न विशुद्धकान्तौ ॥१०॥

मातः प्रतिष्ठितिमये मम रक्ष नित्ये
मह्यं हितानि तव सन्तु समीहितानि ।
शक्तिं धृतिं धियमुमे वितर श्रयाणि
पादाम्बुजं तव सदा सरसं मृडानि ॥११॥

मेधां धृतिं गतिमती विरतिं प्रसत्ति-
मेधां प्रथामपि शिशुः प्रतिलब्धुमिच्छन् ।
त्वां दिव्यमातरमुमे न समाश्रये चेन्
मह्यं किमन्यजननी वितरीतुमीष्टे ॥१२॥

बालो ह्यशिश्रियमहं जननीं वराकीं
नावं यथा जडमतिर्जलधिं तितीर्षुः ।
किन्त्वानिनाय ननु सा तव सन्निधौ मां
मह्यं प्रसन्नहृदया हितमीहमाना ॥१३॥

त्राणक्षमं तु शरणं पितरौ न मात-
र्लोके शिशोरिह परत्र तु का कथैव ।
आर्तो हि भेषजमिव श्रयते वराकः
साफल्यमस्तु यदि तत्र तवानुकम्पा ॥१४॥

संस्निह्य कञ्चन शिशुं प्रतिमाऽपि ते यङ्
कुम्भस्तनौ गिरिसुते पयसां प्रवाहैः ।
प्रीणातु स प्रणमतामयि कल्पवल्लि
सारस्वतीं प्रणयताममलां प्रणालीम् ॥१५॥

अत्यादरेण करुणे मतिपीठसंस्थां
प्रेम्णोपकल्प्य भवतीं हृदयाङ्गणे स्वे ।
उत्प्रेक्ष्य रूपकशतान्यनुरञ्जनानि
संपूजयानि गिरिजे स्मरणप्रसूनैः ॥१६॥

वन्देऽमलेन्दुवदनां रदनांशुकान्ता-
लङ्कारभासुरसुवर्णमणिप्ररोहाम् ।
सङ्कीर्णवृत्तसुषमां मधुरस्वराऽऽढ्या-
मोजःप्रसत्यभिमुखीमखिलात्मरूपाम् ॥१७॥

भव्यानुभावविभवामथ भावशुद्धा-
मुद्धर्षिणीं घनरसामनघाम्प्रगीताम् ।
दुर्गान्नतांसललितोरुनिवेशिताङ्घ्रि
सिंहोन्नतां समभिनन्द्य विभूषयन्तीम् ॥१८॥

पीयूषयूषमसृणां सृणिभिन्नमोहां
सौधाकरीमिव विभां द्विषतीं तमस्ताम् ।
त्वाङ्को भजेत न जनो निखिलार्थजात-
दोहाय मातरयि कामदुघां वरेण्याम् ॥१९॥

क्षीरार्णवीयनवभङ्गजुषः कटाक्षान्
अक्षीणपुण्यपरिणाममिषान्दिशन्तीम् ।
श्रीमत्तनूद्यदनवद्यरुचो हरित्सु
सन्तन्वतीं मृदुलमन्दहसातिरेकात् ॥२०॥

स्वक्षिभ्रुनासमनलङ्कृतसुन्दरं तत्
सौवर्णभूषणभरेण विभूष्यमाणम् ।
संपूर्णशारदसुधाकरसाधुशोभं
गौरं प्रसन्नममलं वदनं दधानाम् ॥२१॥

देवेन कञ्चुकपटी मयि शुभ्रनाग-
यज्ञोपवीततु चिरान्ननु दक्षिणेयम् ।
दक्षस्त्वयं फणिफणस्त्वयि वामभूयं
विन्दन्पटीयति किमित्युपहस्यमानाम् ॥२२॥

गोरोचनैणमदकुङ्कुमचित्रकाय
हारेण भालनयनेन हि चुम्ब्यमानाम् ।
त्वामर्धदेहघटनापटुमीश्वरस्य
वन्दे नवेन्दुशकलायितपत्रपाश्याम् ॥२३॥

अङ्के निधाय शिथिलेन करेण तूर्णं
मन्द्रस्वरेण रणितामपि सान्त्वयित्वा ।
अक्ष्णा रसात्पुनरमूमनुगृह्णतीं त्वां
वीणामिवोन्नतगुणां करुणं श्रयाणि ॥२४॥

मातः श्रयाणि शुभदामरुणाम्बरां त्वां
भासाञ्चयेन शरदिन्दुमपीर्ष्ययन्तीम् ।
स्वाच्छन्द्यदोषजटिलानपि निर्गुणस्य
पत्युर्गुणान्सकरुणामुपवीणयन्तीम् ॥२५॥

विज्ञानसङ्कलनया कलया विभिन्नां
तल्लक्षणक्षणजुषं मसृणोपरागाम् ।
शान्तात्मशाश्वतसुखाय निरञ्जयन्तीं
मातर्न बुद्धधिषणां भवतीं न मन्ये ॥२६॥

तेजस्विनीं च विमलाम्बरशालिनीं च
स्नेहाऽऽढ्यसद्गुणगणाञ्चितरम्यशोभाम् ।
भान्तीं श्रुतीरभिविदश्य तमो निरस्य
त्वां साधुदृष्टिमिव काणभुजीं भजामः ॥२७॥

न्यायान्वितां श्रुतिसखीं मृडमोदहेतुं
त्रैयक्षवीक्षणसुखामपवृक्तिमीप्सन् ।
तल्लक्षणामपि विपक्षदलद्रुहं त्वा-
मान्वीक्षिकीमिव सताममृताय विन्दे ॥२८॥

कस्याप्यसङ्गविरसस्य परस्य पुंसः
संविन्मयीं तनुमिवावृणतीं प्रकृत्या ।
सद्बोधनात्परिणतां तुदतीमविद्यां
त्वां कापिलीमिव नमामि न संहितां नो ॥२९॥

ज्योतिष्मतीं प्रणिहिते प्रणवे विषक्तां
कैवल्यकन्दलितभव्यविभूतिभूषाम् ।
शुद्धाश्चिदीश्वरसुखीन्तु ऋतम्भरेद्धां
पातञ्जलीमिव मतिं भवतीं समीहे ॥३०॥

यज्ञोत्सयां श्रुतिशिखां खलु सोमभूषा-
मन्वेषिणीममृतिनीमथ मन्त्रदेवीम् ।
चन्द्रार्धशेखरिणमप्यतिशय्य शान्तां
मीमांसयाऽधिगमितां भवतीं भजेऽहम् ॥३१॥

अद्वैतिनं विभवनीयिषतं परन्तु
संबध्नतीमधिसतीं सदभिष्टुतां च ।
चिच्छक्तिसत्त्वपरमाश्च सुदुर्वचां च
त्वां शाङ्करीं स्मृतिमनन्तसुखामुपासे ॥३२॥

षड्जोन्नतामृषभवर्य्यनिषेव्यमाणां
गान्धार[1]वामवपुषं कलपञ्चमाञ्च ।
नाट्येन मध्यमकृशां शयने निषण्णां
त्वां धैवतीमिव तु गीतिमुमे स्तवानि ॥३३॥

संप्रीणतीं लघुविधावपि मातृवाण्या
सुस्मूर्षया समिति संस्वरितेऽप्युदात्ताम् ।
जित्वा श्रुतीः शतमथाप्यतिशय्य दृष्टीः
भान्तीं नमाम्यनुपमामुपमामिवोमाम् ॥३४॥

भूयोऽर्थसन्निधिकरीमितिहासरम्यां
नम्यां नृदेवबिबुधैर्हरिणोपगीताम् ।
शीतांशुबन्धुवदनां सदनान्तिकेऽहं
स्नेहं गतां स्मृतिमयीं भवतीं मृशामि ॥३५॥

---

१. लैङ्गे पुराणे—उपरिभागे ५४ चतुःपञ्चाशेऽध्याये द्वाविंशश्लोके गान्धारश्च महादेव इति ।

कृष्णाम्बरां मसृणपीनपयोधरान्तां
छायाघनामपि च निर्झरहारिहाराम् ।
रोलम्बलम्बितकचां सुमनोभिरीड्यां
विन्नः श्रये भवति विन्ध्यवनीसमान्त्वाम् ।।३६।।

मन्दारदामविशदां हरिचन्दनाऽऽढ्यां
कल्पद्रुवल्लिसुभगां प्रियपारिजाताम् ।
सन्ताय नन्दनवनीमिव देवि दृष्ट्वा
सन्तानका दधति मोदमनन्तमन्तः ।।३७।।

कैलासशुभ्रमुकुटां मणिपूरभूषां
काश्मीरदेशविशदां मृगनाभिगन्धीम् ।
गङ्गाम्बुनिर्मलतनुं मलयाञ्चितान्तां
त्वां भारतीं भवति किन्त्ववनीं न मन्ये ।।३८।।

आशस्य सन्ततघनां भवनाटचभूमिं
नेत्रीं सुपुष्करमुखीमपि नन्दिगीताम् ।
भक्ताँस्तु पात्रपुरुषान्विनियोजयन्तीं
त्वां भारतीं गिरमिवाकलये प्रवीणाम् ।।३९।।

हारावदातवपुषं विकचोत्पलाक्षीं
भ्रूभङ्गयुङ्मकरकेतुनितान्ततुष्टाम् ।
कोकस्तनीं भवति हैमवतीं मृणाल-
बाहुं कदा हृदि दधे सुरसिन्धुबन्धुम् ।।४०।।

पद्मानना विकचपद्मवने चरन्तीं
सिक्तां सुवर्णकलशैरमृतोत्करेण ।
क्षीरोदलभ्यजनुषं शशिनः सनाभिं
पद्मां प्रभां च तव साधु सहैव वन्दे ।।४१।।

पीताम्बरं विदधतीं कनकाभभासं
दृष्टिं चिरस्य सहसैव विलुम्पतीञ्च ।
त्वां वै प्रणौमि कमलां शमलापहर्त्रीं
भास्वत्पयोधरपटीं चपलामिवाम्ब ॥४२॥

वन्दे सितांशुविलसन्नवखण्डभूषां
मानोन्नतामपि तिरोदधतीं तु गङ्गाम् ।
सिंहाग्र्यकेसरसटोत्कटकोटिरुद्ध-
पादच्छटामयि जटामिव वल्लभस्य ॥४३॥

शृङ्गोज्ज्वलां रसपुषं कुमुदावदातां
सङ्क्रान्तशङ्करविभूतिममेयशोभाम् ।
गौरीं निगीर्णविनतार्भकदुःखहेतुं
कुर्वे मनोविषयिणीमुत नन्दिमूर्तिम् ॥४४॥

पूर्वानुभूतिविषयान्परिलुप्य गाढं
स्मर्तुं कथञ्चिदपि नो दिशतीं तु तेभ्यः ।
वेद्यक्षणोपहितचेतनयोपगूढा-
मानन्दसन्ततिमिवाम्ब कथन्न सेवे ॥४५॥

भूयोऽपि सद्गिरमिवाकलुषां सचन्तीं
विद्यामिवोपनिषदीं वपुषाऽनवद्याम् ।
हृद्यां द्यतीं द्युतिमिवेन्दुजुषं कषायां
छायां तवेश्वरि तरोरिव गन्तुमीहे ॥४६॥

त्वां चन्द्रिद्युतिमिवेश्वरमौलिभूषां
गङ्गातरङ्गपरिरिङ्गणबिम्बिबिम्बाम् ।
पुण्ड्रच्छटां भसितसंश्रितशुभ्रिमेद्धां
तां ह्रीमतीं प्रणिनुमो महिषीं हरस्य ॥४७॥

विष्वग्वृतां मधुकरैर्मकरन्दहेतो-
रानन्ददाय्यमृतपूर्णफलैरुपेताम् ।
एकान्तवाससुरभिं सुमनःपराग-
पीतां स्मितैरपि तु माधुकरीवदान्याम् ।।४८।।

त्वां पल्लवाङ्गुलिभिराह्वयतीमिवान्या
उल्लप्य पञ्चमगिरा न नु देवकन्याः ।
दृष्ट्वा सतामहमये दुरवस्थितोऽपि
नन्दाम्यनल्पमिह कल्पलतां सुखीव ।।४९।।

आनन्दवारिनिवहप्लवशुद्धवेषां
मुक्तोपभोगसुभगां प्रकृतिं दधानाम् ।
हंसस्य कस्यचन कांचनमोदहेतुं
त्वां संश्रये पयसि मानसराजहंसीम् ।।५०।।

ऊष्मप्रतप्तजगतीं परिणम्य चन्द्रा
ऽऽलोकात्मनाऽऽयतरुचं प्रियशीतभूम्ना ।
सङ्क्षिप्तजीवनमयीं सुखयिष्यतीं त्वां
वन्दे निदाघदिवसान्तिमकान्तिभङ्गीम् ।।५१।।

त्वां नीलकण्ठहृदयोन्मदनैकहेतुं
विद्युत्प्रभाम्बररुचिं घनकुन्तलालीम् ।
न प्रावृषं कथमिवाऽऽगमये पदानि
निक्षिप्य पल्लवनवोत्सवमादिशन्तीम् ।।५२।।

काशांशुकामरुणसंविकचोत्पलाक्षीं
गौरीं शशाङ्कमुखि शीतलितान्तरात्मा ।
लब्ध्वाऽमृतं नवमनिन्द्यचकोरदृष्ट्या
पश्यामि संप्रति न शारदपौर्णमासीम् ।।५३।।

सोष्मोन्नतस्तनभरं दधतीं प्रसन्नां
स्नेहौष्ण्यमाविदधतीमरुणानलाभ्याम् ।
मोदावहान्यपि तु सङ्क्षिपतीं दिनानि
त्वां संश्रये श्रियमये ननु हैमनीं श्रिम् ॥५४॥

कुन्देडितप्रकृतिशुभ्रदृगन्तपातै-
रम्भोजकाननरुचीः परिभूय भान्तीम् ।
हैमीं कृताञ्जलिहिताय तुषारशीतां
विन्दे नितान्तरतिमाञ्छिशिरर्तुकान्तिम् ॥५५॥

आमोदिनीङ्किसलयारुणचारुभासं
पुष्प्यत्प्रसूनसुकुमारतनूमुदाराम् ।
दृष्ट्या परागनिकरं क्षिपतीं विदिक्षु
त्वां संश्रये न मधुपो न वसन्तलक्ष्मीम् ॥५६॥

चन्द्रप्रभाकरकरैरसमं विशिष्टा-
मैशीन्तनूङ्घुसृणपङ्ककरम्बणार्हाम् ।
रक्तोत्पलाखिलरुचं न चिरस्य वन्ध्यां
सन्ध्याविवाऽन्ध्यगिलितोप्यनिशं निषेवे ॥५७॥

भूरिप्रसन्नविभवामभितः प्रभिद्य-
दम्भोजगर्भसुभगां दधतीमभिख्याम् ।
भूयो भवानि भवतीमभयो भजेऽहं
वैभातिकीमिव विभां भुवनेषु भान्तीम् ॥५८॥

अद्धा सुधा तव मुधा तरले कटाक्षे
स्पृष्टा ययाऽमृतमयङ्कलयन्ति देहम् ।
चान्द्री कला न किल शुभ्रदृगन्तपूता
प्रह्लादनाय जलधेरपि किं प्रभूता ॥५९॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दमिवेर्ष्यन्तो
भृङ्गायितं प्रविचरन्ति बुधाः सुधायाम् ।
आनन्ददायिनि दिवानिशमप्यमन्दं
विन्देऽरविन्दवदने तदनेन योगम् ॥६०॥

आपीडच पाणिकमलेन भवेन मूर्ध्नि
सन्धारिताच्चरणकोकनदान्मृडानि ।
चुश्च्योत यस्तव रसान्मरन्दविन्दुः
सैवाम्बिका त्रिपथगा भुवनं पुनन्ती ॥६१॥

यश्चेश्वरस्य विमलेऽम्ब ललाटपट्टे-
ऽङ्घ्र्युद्घर्षणाद्व्रणकिणो नखरेण तेऽभूत् ।
तेनैव तत्र सहसोल्लिखितः कलात्मा
लावण्यपूर्णवपुषा मिषतोऽयमिन्दुः ॥६२॥

संमोहनं स्मरहरस्य हृदोऽक्षिपङ्क्ते-
राकर्षणं विनयनं नयनं श्रुतीनाम् ।
उज्जीवनं रतिपतेः प्रभवत्वविघ्नं
कल्याणि माङ्गलिकनूपुरशिञ्जितं ते ॥६३॥

प्रेम्णा जनैः स्वहृदयेष्वनुरञ्जितौ तौ
देवेन्द्रमौलिमणिघर्षणशोणकान्ती ।
स्पष्टोल्लसन्नखगणश्रियमुद्वहन्तौ
मातर्वृणोमि शरणं चरणौ त्वदीयौ ॥६४॥

तापत्रये हितजनुस्तरुणाधिरेष
दग्ध्वा तनूं मम विलापयिता न नःस्यात् ।
मातर्मनो निवसतेस्तव किन्तु नूनं
हैयङ्गवीनमनले कठिनं बभूव ॥६५॥

सार्धं त्वया स्मरहरे विनिबद्धभावा
पाणिग्रहेण विधिनैव तु वञ्चितेयम् ।
नेर्ष्यां बिभर्ति न सरित्प्रवरोच्छलन्ती
हारे हरे हिमकरे मकरे करे च ॥६६॥

उत्पक्ष्मफुल्लरुचिरेक्षणलाच्छनार्हं-
मीषत्स्मितोदयतिरस्कृतचन्द्रिकं ते ।
प्रस्तौतु कैश्यकलितं वदनं वदान्ये
राहुर्दिवा ग्रसति पर्व्व विना किलेन्दुम् ॥६७॥

छायाच्छलोन्मिषदनुत्तमकान्ति कान्त-
माह्लादि चूर्णचिकुरोत्करचुम्ब्यमानम् ।
अन्वेति नाम वदनं तुलनार्थमीड्ये
किं दार्प्पणं हिमकरं विकचारविन्दम् ॥६८॥

दीर्घालकान्तुकुटिलाऽवतताग्र्यपक्ष्म-
प्रोत्फुल्लचारुनयनादवतीर्णदेहा ।
इन्दीवराहितरुचिस्तव मां विदग्धा-
द्रोलम्बपङ्क्तिरिव तीक्ष्णकटाक्षमाला ॥६९॥

चन्द्राननाऽप्यरुणरुक्सरणिप्रभिन्ना
ह्येकत्र सन्निबिडतारकितान्धकारा ।
उद्वीक्षिता ननु निरातपसंप्रयोगे
किं द्रुह्यतीव तु दिवे तव देवि वेणी ॥७०॥

स्थाणोर्विशाखमविशिष्य सुकल्पवल्ली-
बुद्ध्याऽऽश्रयन्नभयदे भवतीं भवानि ।
श्रेयः सुमामृतरसैकनिमग्नचेता
इन्दिन्दिरः कथय किं कुरुतामपर्णे ॥७१॥

लक्ष्मीस्त्वमेव गृहिणी वरदस्य मात-
विद्यास्त्वमस्य ननु वेदमयस्य पुंसः ।
भिक्षोः परस्य भवती सुखदाऽन्नपूर्णे
भव्यं न्वहं विभजिषाणि न मे विवृत्स ।।७२।।

त्वत्पादपद्मनखरद्युतिदीप्तमोह-
जालस्य मे शिरसि वत्स वचोऽमृताढ्ये ।
मातर्निधास्यसि कदा नु करं प्रमोद-
स्विन्नाङ्गुलि म्रदिमभास्यदयोपरक्तम् ।।७३।।

चन्द्रो नखप्रतिफलं प्रणतोऽपि बर्हि-
रारुण्यतारुणिमचारुतलं कुतो न ।
पादान्तिकं निपततां तव तापहेतु-
रज्ञानसन्तमसमम्ब भजेदभावम् ।।७४।।

मातः कदा भवतु मे भवती प्रसन्ना
यस्मिन्क्षणे शिववपुर्बिभयानि नाहम् ।
निःश्रेयसन्ति तु जनूंषि भवत्प्रभावा-
द्विद्या रमाऽथ परमा सकलं त्वमेव ।।७५।।

मातर्निभाल्य युगलं हरिचन्दनैण-
नाभीविलेपसुभगं कुचयोरुदग्रम् ।
मुग्धः कदा नु मलयासितकूटशृङ्ग-
मुत्प्रेक्ष्य बालवपुरेकरदी भवानि ।।७६।।

मातस्तरङ्गितरुचाऽचिरतापहारि
भूयः पदाब्जयुगलं पुरतो विधेहि ।
स्नातुं मनो विमृगयन्मरुतोयनद्यां
भ्रान्तं तृषाकृशवपुर्मम मा हि पप्तत् ।।७७।।

रागिण्यथामृतमयी शशलाञ्छितापि
लोके सुखाय तु नृणां ननु चन्द्रकान्तिः ।
रक्ता सुधासहचरी मलिनैव दृष्टि-
र्मतिस्तमस्तिरयतीति किमत्र चित्रम् ॥७८॥

देया ह्युमे भवति मे दृगपाङ्गकोणं
शोणं कुतोऽपि मयि रागिणि रागहेतोः ।
श्वेतासितारुणरुचान्तु मिषेण मिश्रां
सत्त्वं रजस्तम इति त्रिगुणीं बिभर्षि ॥७९॥

योऽसौ महेश्वरि वियन्मुखभूतवर्गो
ब्रह्माण्डभाण्डपरिपिण्डितताण्डवोऽयम् ।
भद्रं मनोण्विदमनास्थितवृत्तिदुष्टं
केन ग्रहीष्यति पथा महिमप्रकाण्डम् ॥८०॥

संराविणी कलरवानुकृतेः कृते ते
स्वभ्यासहैतुकपटुत्वमिवेहमाना ।
वाण्यास्तवार्हणवचोरचना हि वीणा
ह्रीणा न कोणमपि मोक्ष्यति सौवरं द्राक् ॥८१॥

चीर्णं तपो न मयका जननि प्रलब्धा
विद्याः श्रियो न सुभगा मम देवताऽन्या ।
धीर्ह्रीस्त्वमेव ननु साधनकेन केन
ह्याराधये सपदि मङ्गलमोदहेतुम् ॥८२॥

संविन्मयी प्रकृतिशोभनशुद्धदेहं
तं निष्क्रियं विकृतिहीनमुपाधिभास्यम् ।
साक्षात्परं परमनोवचसामगम्यं
स्वात्मानमाहितमुमे सततं पुनासि ॥८३॥

आनन्दसच्चिदुपगं तदृषिप्रगीतं
किं ब्रह्म नात्र विमृशन्न लभे विवेकम् ।
सेकं लभे तु तव दर्शनतोऽधिशुष्य-
च्चित्तस्य चापलिमलोपकशान्तिवार्भिः ॥८४॥

भूयोऽपनेष्यसि कथं कुटिलस्य पापान्
पापापहारपरमे परमे रमातः ।
मार्तर्विनेष्यसि न चेत्करुणारसार्द्रा
सार्द्रापराधममुकञ्छिशुकं भवत्याः ॥८५॥

चित्रं लिखानि हृदि किं विनयानि कीदृक्
स्वात्मानमीश्वरि कथं भवतीं प्रणौमि ।
किं वा स्तवानि वचनानि कथं ब्रवाणि
सत्यं शपेऽम्ब न लभेऽमृतवाणि बोधम् ॥८६॥

भावार्थिनी विरहिणीव विचारशून्या
मुग्धा वधूरिव पुरो न पदं दधाना ।
वेश्येव हीनहृदया शिथिलय्य संविन्
मातः पराञ्चति चिराय चमत्कृतान्मत् ॥८७॥

सेयं मतिर्न कृपणा परिदेवितेभ्य-
स्तेऽन्यत्स्तुतो रचयतात्परिदेवि तेभ्यः ।
मातः स्मराणि यदि सस्मरघस्मराणि
दुःखानि खानि ननु यैर्हृदयं न्यखानि ॥८८॥

सोऽयं न गद्गदवचोरुचिरः प्रबन्धो
बन्धोरुदोषमपनीय सतां निकामम् ।
कामं सदाऽभिलषितं सुहितं विधत्तां
धत्तां श्रियन्तु पदयोः कुमुदावलीनाम् ॥८९॥

नैशे समावृणति सन्तमसे द्युमन्त्य-
प्याविद्यके भवति भान्ति न भान्त्युडूनि ।
हृत्पङ्कजातकुमुदान्यतिसुन्दराणि
तुभ्यं शपे जननि नम्रमुपाहराणि ।।९०।।

मातर्निशीथसुखदेऽवतराशु मह्यां
सह्या नतारकचिताऽपि तु संसृतिर्यत् ।
अज्ञानदोषगिलिता प्रविलुप्तचन्द्रा
घोरान्धकारबहलैव महाष्टमीयम् ।।९१।।

यद्बालगीतममुना शिशुना ह्यगायि
तस्यैव किं फलमिदं ननु नव्यगानम् ।
सङ्गीयतेऽपरमपि प्रचुरञ्च काव्य-
मात्मप्रतुष्टिमपि ते रचिताऽस्मि मातः ।।९२।।

मातस्त्वमेव सुखदाऽत्र परावरेऽपि
लोके विमुक्तिपरमे शिवसङ्गशोभे ।
येषां मनस्त्वयि सजन्निरुपद्यमीभ्यः
स्वाराज्यभोग्यमखिलं वसुधैव सूते ।।९३।।

शान्तिस्त्वमेव तु सतामथ वीरलक्ष्मी-
र्विद्या प्रसन्नविदुषां विभवो नृपाणाम् ।
त्वन्मायया विवशतां गमितो जनोऽयं
सर्वोऽपि दुःखसुखयोर्विषयान् पृणक्ति ।।९४।।

शक्तिस्त्वमेव तु शिवो हि पदार्थमात्रं
शब्दस्त्वमेव परमः परमः पदार्थः ।
यत्नोऽप्यतो हि बिबुधैस्त्वदवाप्तयेऽयं
भद्रं भवानि विधृतोऽमृतमीहमानैः ।।९५।।

द्वैमातुरेण करिणां प्रियमोदकेन
षाण्मातुरेण च रणन्मणिनूपुरेण ।
साकं सदा स्मृतिमयीव विशिष्टमाये
कुम्भस्तनी दशभुजे न कथं विभासि ॥९६॥

चन्द्रे विभा दिनकरे च मरीचयः स्वा
बेभिद्यतां यदि परं भवती प्रभौ न ।
शक्तिः पदार्थमतिशय्य हि वर्ततां चे-
दात्मानमेव विजहीत न हीष्यते तु ॥९७॥

मन्दाकिनीसलिलसेकविशुद्धकाया
मन्दारपुष्पविषमार्द्रसुगन्धिकेशाः ।
माल्यादिभिर्भवबधू प्रणयोपरागा-
स्त्वामर्चयन्ति सुभगा बत देवकन्याः ॥९८॥

मन्दाकिनीप्लवजुषोऽप्यमृताशिनोऽपि
रम्भाधरेन्दुकिरणाहतिसेविनोऽपि ।
स्नातुं नखांशुनिचये पदचुम्बनाय
सेर्ष्याश्च तेऽर्घ्यफलपाद्यरसैषणाभ्याम् ॥९९॥

यां ते कृशाङ्गि शुचिहारतडिल्लतेद्धौ
पायोधरीमयि कुचौ बिभृतः श्रियंताम् ।
मेघा मृषा पयसि नाम्नि रसाभिमत्या
गर्ज्जन्ति बिभ्रत इवाङ्कुरितोदयाः किम् ॥१००॥

येनाऽऽरम्भि बुभूषुणा कविरिह प्राग्बालगीतस्तवो
ह्यंहःसु प्रजिहीर्षुणा च नियमात्स्वाराधि विश्वेश्वरः ।
देव्यां श्रीशिवशङ्करेण विदुषा सामर्थ्यवत्यां तपः
सामर्थ्याज्जनितेन तेन विहिता सिंहोन्नतासन्नुतिः ॥१०१॥

जानन्ननेकभाषाकल्पंवैभाषिकन्नयोऽध्यैष्ट ।
तस्य श्रीकान्तपतेः कृतिमालोक्यान्तरुल्लसन्ति न के ॥१०२॥

शिवशङ्करपतिसूनोः श्रीकान्तपतेः कृति विलोक्यैताम् ।
कृतिनो मुदमादध्युस्तेषां हृदयं यतो गुणग्राहि ॥१०३॥

रुक्मिणीहरणम्

ततः सनीलोत्पलदामसङ्गिनीं
प्रियाङ्कलाभाय भृशाङ्गभङ्गिनीम् ।
जहार गौर्याः पुरतः स्वमन्दिरे
तया वितीर्णामिव माधवः श्रियम् ॥१॥

प्रगृह्य बाह्वोर्बलवत्समुद्धृतां
वधूंस्पृशन्नप्युरसा वराङ्गनाम् ।
रथं हरिस्तां लघु सोऽप्यरूरुहत्
न सैनिकानां तु पुनर्व्यचिन्तयत् ॥२॥

प्रियाङ्कगा स्यन्दनमग्र्यमाश्रिता
बभौ श्रियाऽनन्यसमैव रुक्मिणी ।
शतह्रदा नीलनवाम्बुदायुता
सुमेरुशृङ्गं त्वधिरुह्य निश्चला ॥३॥

परस्परालिङ्गनशालिनोस्तयो-
र्निरीक्षणैः प्रेमविलोकनैरपि ।
विमोहिताश्चित्रगता इवापरे
न सैनिकास्तां व्यविदन्नपाहृताम् ॥४॥

सखीजनोऽप्यच्छलमन्तरात्मना
प्रदर्शयन्त्स्वां समयज्ञतां शुभाम् ।
तथा व्यहार्षीत्कुशलेन माधवे
यथा स निर्वृत्तममन्यतोत्सवम् ।।५।।

प्रयान्तमश्वैर्दिवि लब्धसंभवै
रथेन ते भास्करतुल्यवर्च्चसा ।
न शेकुरार्त्ताः सहसाऽभिवीक्षितुं
प्रियासखं तं परिवारसैनिकाः ।।६।।

क्षणं विमूढाः प्रतिलभ्य चेतना-
मथो समाचुक्रुशुरेकदैव ते ।
ववर्षुरस्त्राणि धनूंषि सारवद्
विकृष्य संहत्य यथा बलाहकाः ।।७।।

प्रभुस्तु शार्ङ्गं लघु संपरामृश-
न्निपेतुरुल्का इव मार्गणास्ततः ।
परे ययुर्दूरतमानि दिङ्मुखा-
न्यथो समाचुक्रुशुरार्त्तवन्नृपम् ।।८।।

नरेश्वर श्रेष्ठमुपाश्रितो रथं
नवाम्बुवाहोत्तमकान्तियुग्युवा ।
प्रफुल्लनीलोत्पलहारहारिणीं
श्रियं तवापाहरतेऽद्य रुक्मिणीम् ।।९।।

यदुप्रवीरस्तु विवृत्य भास्वता
रथोत्तमेनोपवनं सुशोभयन् ।
स्पृहामथायन्निव साम्परायिकीं
विनोदयन्नास सुतां स भूपतेः ।।१०।।

मृगाक्षि मन्दाक्षमपास्य हे मना-
गपावृणु त्वं पुरतः पटाञ्चलम् ।
अचञ्चलाः सन्तु तवाननाञ्चिताः
सुधां धयन्तो मम नेत्ररश्मयः ॥११॥

दिवापि चन्द्रेण समेतु चन्द्रिका
पिकी विहायोपवनं पलायताम् ।
स्मरो रतिं स्वामभिमन्य सुन्दरीं
मयि क्रुधं कालचितं विमुञ्चतात् ॥१२॥

इतोऽपि रुक्मी पितृवाच्यनादरी
तमभ्यधावत्प्रतिकेशिमर्द्दनम् ।
धनुर्गृहीत्वैन्द्रमुपासनाद्वयं
द्रुमस्य शिष्यो रभसाद्रथाश्रयी ॥१३॥

पुरं समेष्याम्यविजित्य नो हरिं
पितुः प्रतिज्ञाय रुषा रणोत्सुकः ।
स सन्ददर्शाद्भुतवीर्य्यशालिनं
वनैकखण्डे खलु तत्र माधवम् ॥१४॥

ततः स दृष्ट्वा स्वसृतापहारिणं
शरैर्ववर्षोत्तमवीर्य्यमाश्रितः ।
धनुर्दधानो विजयं जयावहं
जगौ रुडाध्मात इवापगीतकम् ॥१५॥

क्व यासि जीवन्न विमोक्ष्यसे हरे
ममापकर्मंश्च्युतसीम धार्मिक ।
तवाद्य दर्पं च सरान् धनुस्तथा
सहैव जीवेन मया प्रणाश्यते ॥१६॥

प्रिया ममेयं तवका नु मूर्ख हे
किमेवमस्थानगतां रुषं श्रितः ।
प्रयाहि जीवन्पितुरन्तिकं सखे
शिशुस्त्वमद्याप्यविपक्वचेतनः ॥१७॥

इतिस्म तस्मै धनुरीरिताञ्छरा-
न्समर्पयन्नेव हरिर्जगाद ह ।
निरस्तवीर्य्यं क्षणमात्रकाच्च तं
ज्यया गृहीतं स्वरथे बबन्ध ह ॥१८॥

ततस्तु तं भ्रातृहिते रता प्रिया
कृताञ्जली रुक्मिकृते व्यजिज्ञपत् ।
विमुञ्च हे नाथ ममैष सोदरः
शिशुत्वमस्यैकमिदं क्षमास्पदम् ॥१९॥

विमुच्य तं चैष विभुर्हलायुधं
निशम्य सक्तं शिशुपालभूभुजा ।
तमुद्दिधीर्षुः खलु तेन वारितः
क्षमेण नैजं भवनं जगाम ह ॥२०॥

निवृत्य रुक्मी विदधे नवं पुरं
स्ववासहेतोरतिरम्यशालकम् ।
तदन्तरा भोजकटेति नामकं
न्यवीविशद्वर्णकुलक्रमेण च ॥२१॥

ससात्यकिर्लाङ्गलधारको बलः
सहोद्धवाक्रूरगदादियादवः ।
वृतोऽथ भोजैः कृतवर्मणा स्वयं
तथैव चान्यैरपि कृष्णसंश्रयैः ॥२२॥

सभूपमालं शठचेदिभूभुजं
सभीष्मकं चापि विजित्य वेगवान् ।
द्रुतं निजग्राह हरिं प्रियायुतं
जयेति वर्द्धापनमस्य कारयन् ॥२३॥

उभौ ततो रामहरी पयोधिवत्
समुद्वहन्तौ यदुभोजसंग्रहम् ।
पुरीं निजां तोरणमालिकाञ्चितां
महोत्सवौ प्राविशतां वधूदृशाम् ॥२४॥

मुखेन्दुबिम्बैरतिकान्तकान्तिभिः
पुराङ्गनानां नयनोत्पलाञ्चितैः ।
प्रवीणतूर्य्या ध्वजतोरणायुता
तदा पुरी साऽद्भुतदर्शनाऽभवत् ॥२५॥

मुखैः शशाङ्कैर्नयनैर्महोत्पलैः
सचक्रफेनस्तनहासशोभया ।
सशुक्तिमुक्ता स्फुटकण्ठकम्बुभि-
स्तरङ्गबाहुर्वरुणालयायिता ॥२६॥

मुखेन्दुबिम्बानि तदा पुरस्त्रियां
गवाक्षजालापतितानि रेजिरे ।
सुमेरुशृङ्गावततानि स्वर्णदी-
सुवर्णपद्मानि परिस्फुटानि व ॥२७॥

कयाचिदालोक्य वधूं वरं तथा
समीपगोक्तैव सखी प्रहासितुम् ।
अये कले त्वामपहाय कामिनीं
हरिः किमैर्षादभिरामदामिनीम् ॥२८॥

कयाऽपि नार्या स्तनमण्डलद्वयी
पटावृतावुत्तमरागिहारिणी ।
तथाऽस्य पत्युः परिदर्शिता पुरो
यथाऽन्वभूल्लज्जितमाशु रुक्मिणी ॥२९॥

तथाऽपरस्याः सुनितम्बबिम्बिकं
स्वरश्मिसञ्छादितपूर्णचन्द्रवत् ।
पटान्तरेवेक्ष्य मुदं ययौ हरिः
निवेदयेन्मे ननु कीदृशं प्रिया ॥३०॥

पुरः परस्याः प्रचलन्परस्त्रियाः
कटाक्षबाणाहतिमन्वभूद्धरिः ।
यथा न रुक्मिस्वसृनेत्रवक्रिमा
समुद्दधार द्विगुणीचकार वा ॥३१॥

प्रबालरम्याधरशोभि सुस्मितं
न्यवेदयच्चारुगमा विलासिनी ।
अहो त्वयेयं परिणीयते प्रिया
मया कथं वा न न रिष्यते ह्रिया ॥३२॥

वराङ्गना काऽपि हरौ कराम्बुजं
समाह्वयन्तीव तथा व्यकाशयत् ।
यथाऽस्य रूढं प्रणयं सखीजने
निदर्शयामास नवाक्षिरागिणी ॥३३॥

प्रकीर्य्य लाजानपरा शुचिस्मिता
कटाक्षबाणानववर्षदङ्गना ।
जहार चेतो नृहरेस्तथा यथा
विमोहयामास नवां वधूं मुदा ॥३४॥

परा विजित्यापि रतिं वराङ्गना
नवां बधूं वीक्ष्य युतेर्ष्ययाऽभवत् ।
इमां किमासाद्य हरिः प्रियोत्तमां
प्रणीयतेऽस्मासु मनोजदेहभूः ।।३५।।

प्रफुल्लपद्मेन हरिं विनिघ्नती
परा पराजेष्ट श्रृतेन रुक्मिणीम् ।
कठोरवक्षःपरिरम्भलोलुपौ
स्तनौ यथाऽस्या नियतं ववल्गतुः ।।३६।।

प्रमुष्टचित्ता नरशोभयाऽपरा
हरिं बहिर्यान्तमपि व्यलोकयत् ।
तथा रसार्द्रानिमिषेण चक्षुषा
यथा न तस्या हृदये बभूव सः ।।३७।।

दृगन्तभागेन पुनः परस्या
वधूकटाक्षः प्रचलन्मिमेल ।
दधेन्तरेका हृदि शोककशङ्कुं
पराऽपि जिह्राय मुदं जिगाय वा ।।३८।।

रागिगीतम्

उत्फुल्लमिन्दीवरयुग्ममेतन्मुखारविन्दे तव तन्वि भाति ।
रोलम्बमाला नितरां कटाक्षव्यक्षेपभीता कतमद्वृणोतु ।।१।।

कटाक्षपातेन वृणु त्वमस्मानित्येव मन्ये त्वयि तन्वि वाच्यम् ।
वयं क्व यामस्तरुणि श्रुतेच्छा स्तनद्वये ते विलुठन्ति मुक्ताः ।।२।।

ऊर्वोः श्रिया ते विजितान्यतः स्वानाच्छादयन्ति प्रथमाः कदल्यः ।
करोतु किन्तन्वि मनोगजोयं मुधा गृहीतो मदनाङ्कुशेन ।।३।।

चीनांशुके ते प्रतिभाति यादृङ्मुखं प्रसन्नं स्मितसुन्दरश्रि ।
न तन्वि तादृङ्नयने ममैते चन्द्रं क्वचिद्व्योमनि पश्यतस्तु ।।४।।

सुधाऽधरे या तव तन्वि रस्या सुधाधरे सा न सुधाकरेऽपि ।
नोचेदनिन्द्योत्तमकारिणोऽमी तृप्यन्ति देवा न कुतोऽमृतेन ।।५।।

प्रभातकाले तव तन्वि दृष्टं मुखं प्रसन्नं मम देवराज्यम् ।
ददाति तद्यामि कुतो नु भूयो मनो न मे चन्द्रममुं वृणोति ।।६।।

सन्नानि मेऽङ्गानि न तन्वि जाने किङ्कर्त्तुमिच्छस्यनघे मयि त्वम् ।
छेत्ता द्विधा वा कतिधा मनो मे त्वत्केशपाशोऽयमनङ्गखङ्ग ।।७।।

स्वप्नेऽपि ते दर्शनमाप्य दृष्टं मनोऽभिवाञ्छत्यखिलाङ्गसङ्गम् ।
रूपासवं ते पिबतो न दृष्टी मत्ते गतं जन्म मुधा ममेदम् ।।८।।

चेल्लोचने अर्पयसीह रक्तें न तृप्तिमाप्नोमि पिबन्प्रसादम् ।
दधेऽथवा हृत्पुटके विलग्ना यथा न निर्वासि मदानुवेधात् ।।९।।

दृष्टया पिबन्किं न चुचुम्बिषामि प्रफुल्लनीलोत्पलकल्पमक्षि ।
कुतो नु तन्वि प्रमदेव मह्यमनङ्गदानङ्गरतिर्विभासि ॥१०॥

स्वप्नेऽपि यद्बाहुलतानुविद्धं कण्ठं स्वमीक्षे जलजायताक्षि ।
दधेऽथवा चुम्बनसीत्कृतानि त्वमेव सानङ्गपुरीव मेऽङ्ग ॥११॥

स्वप्नेऽपि या क्रीडति मे विशालं संपूरयन्ती नयनं रसेन ।
बहिर्धृतेवान्तरपि प्रविष्टा त्वमेव सा तन्वि ममैकवित्तम् ॥१२॥

श्येनकपोतीयमाख्यानम्

अथैवमाख्यानमनुश्रुतं श्रुतेः
पुरा शिविर्नाम बभूव भूमिपः ।
स वाजिमेधाभिधमध्वरं सुधीः
समध्यतिष्ठन्मधुभित्प्रियेप्सया ॥१॥

सतोरणे मङ्गलभारसम्भृते
महामणिस्तम्भविराजितेऽध्वरे ।
सतूर्य्यवादित्रकृतस्वने तथा
महर्षिराजर्षिजनैरधिष्ठिते ॥२॥

द्विजर्षिवर्य्यैर्व्यपदिश्य देवता
हवींषि वह्नौ जुहवांबभूविरे ।
प्रदक्षिणावर्त्तशिखो विधूमभा
उदर्च्चिरग्निर्लिलिहेऽभितो ज्वलन् ॥३॥

अभूद्विसृष्टस्तुरगस्तमन्वयु-
र्धनुर्धराः क्षत्रियवीरपुङ्गवाः ।
न कोपि शक्तोऽश्वविनिग्रहेऽभवत्
परो नृपोऽदात्करमेव केवलम् ॥४॥

यदा व्यतीयाय नवाधिकाऽन्तरा-
ऽन्तरायमित्थं नवतिः सवात्मिका ।
तदाश्वमेधावभृथाद्विभाय स
प्रकाशतस्तथ्यमुदग्रकौशिकः ॥५॥

ततः समागान्नृपतिं शिबिं जवाद्
भयेन वाञ्छञ्छरणं मखे स्थितम् ।
प्रपात्यमानः प्रियदर्शनः शिशुः
कपोतकः क्रूरतरेण पत्रिणा ॥६॥

स तं भयादङ्कमुपागतं खगं
शिबिः समालक्ष्य दयार्द्रमानसः ।
स्वयं विशुद्धात्मतयोचिवान्प्रभु-
र्भयं न तेऽस्त्याश्वसिहीति सौम्यवाक् ॥७॥

भयं कुतस्तेऽण्डज कुत्र किन्त्वया
कृतं त्वदीयो न्वपराध एव कः ।
विभेषि वा त्वं खग कारणात्कुतः
कथं समागम्य विचेतनोऽभवः ॥८॥

द्विजाऽत्र रक्षाधिपपुङ्गवाः पुर-
स्कृता मदुत्सङ्गतले तव स्थितिः ।
तव ग्रहायाथ समुत्सहेत क-
स्तदङ्गवाचा मनसाऽपि वासवः ॥९॥

न दाडिमाशोकसुमाभचक्षुषो
नवीननीलोत्पलकोमलस्य ते ।
भयं मदुत्सङ्गगतस्य विद्यते
खगात्र मात्वं त्रस तेऽभयं कृतम् ॥१०॥

सकाशिराज्यं सकुलं समित्रकं
कलत्रपुत्रादि तथा स्वजीवितम् ।
त्वदर्थमद्यैव परित्यजाम्यहं
कपोत विश्रब्धमनाः सुखी भव ॥११॥

इति ब्रुवाणे सदयं क्षितीश्वरे
कपोतपोतानुगतो विनिःश्वसन् ।
निवेदयामास निजं समीहितं
क्षुधाकृशः श्येनवरः समापतन् ॥१२॥

ममैष पक्षी नृप भक्ष्यमिष्यते
स नो परित्रातुमिमं त्वमर्हसि ।
सुदूरमाक्रम्य मया निरन्तरं
प्रयत्नतः प्राप्तमिदं घृतौदनम् ॥१३॥

समांसमेदो रुधिरो हिताय मे
कपोतकः प्राज्ञ सहैव मज्जया ।
ममैष पक्षी परितोषकारणं
क्षितीश माभूः पुरतोऽस्य पालयन् ॥१४॥

न ते दहेतामदये क्षुधातृषे
नवोत्क्रमेयुर्ह्यसवो व्यसोर्मम ।
न निष्फलं स्याच्च विदूरधावनं
यथा तथा नाथ विधेह्यधीशिषे ॥१५॥

इयं शरीरस्थितिरेव भाविनी
न बुद्धिमन् क्षुत्तृडवग्रहाकुला ।
न दुःखमन्यन्निगदन्तिदेहिनो
निराशता नाम निकृष्टवेदना ॥१६॥

तृषोग्रयाऽहं परिबोधितोऽस्म्ययि
क्षुधा समन्ताद्दहतीव मत्तनूम् ।
नृपाशु मोक्ष्यन्त्यसवः शरीरकं
विमुञ्च पारावतमेनमीश्वर ।।१७।।

पिपर्षि लोकं भुवनं बिभर्ष्यमुं
क्षितीश नैराश्यमियान्न याचकः ।
यशःप्रकाशं शरदिन्दुमोषकं
कलानिधे पोषक तेऽद्य गीयते ।।१८।।

सुराङ्गनाः कीर्त्तिमनिन्दितां मुदा
कलेन गायन्तु दिवानिशं दिवि ।
प्रवर्धतां धर्मधनाद्यसङ्गता
सदा न चेयादतिथिर्निराशताम् ।।१९।।

महेन्द्रतुल्यत्वमनुप्रविश्य भो
उशीनरात्मानमवेक्ष्य पक्षिणाम् ।
त्वमत्र तां सङ्ग्रहनिग्रहार्थिनीं
प्रवृत्तिमेनामनुरुध्य धार्मिकः ।।२०।।

प्रपीड्यमानस्य तृषा कृशस्य मे
क्षुधाऽथ दैवेन विधीयतेऽपि यत् ।
तदाहरन्धार्मिक धर्मवत्सल
स्वरक्ष्यमन्यं विजहासि धर्मकम् ।।२१।।

तथार्थयानाय नृपः स दूयते
विचिन्त्य संस्विद्य विहस्य पक्षिणे ।
उपायनं साधुगिरं समाददे
प्रलोभयन्तीं विविधैरनुश्रवैः ।।२२।।

२२

मयाङ्ग पूर्वं शरणं समागतो
न कश्चिदत्याजि कथं च नापि हि ।
भयादिभिर्वा स्वपरेच्छयाऽपि वा
परञ्च जन्तुः सकलः सुखीकृतः ॥२३॥

महाद्विज त्वद्धि कपोतपोतको
बिभाय सर्वस्य हिताः स्वकेऽसवः ।
अथाभ्यगात्सन्निधिमत्र मामकं
तदस्य किं त्याग उपायनं भवेत् ॥२४॥

न वातिथेः शान्त्यभयार्थिनोऽस्य वै
तदप्रदानं मयका कथं न वै ।
प्रकृष्टधर्माय धियाऽनुमन्यतां
समीक्ष्य सूक्ष्मं किमहो विभाससे ॥२५॥

कपोतपोतः परिविपता मम
प्रविष्ट एषोऽङ्कमिहैव तन्वका ।
प्रकम्पमानस्य च जीवितार्थिनः
शरण्यताभङ्ग उपाधिरांहसः ॥२६॥

ततोऽहमस्मै न दधे जिहासिका-
मबन्ध्यबध्यामिव गोर्द्विजस्य वा ।
उपासनीयं च मया पुनर्व्रतं
शरण्यताया अपरं समादिश ॥२७॥

त्यजान्यहं भक्ष्यमहो अहो कथं
समस्तभूतानि महीपते शृणु ।
विना स्वमाहारममूनि जीवितुं
विवृद्धये वा न च संभवन्ति वै ॥२८॥

न शक्यते दुस्त्यजमर्थकारणा-
त्स्वजीवनं त्यक्तुमिदं कथञ्चन।
विना स्वमाहारमथो कदापि वै
न शक्ष्यते केन च नापि जीवितुम् ॥२९॥

वियोजितस्याद्य ममासवस्त्वमी
स्वकीयभक्ष्याद्धि कपोतपोतकात्।
समेत्य पन्थानमिदं शरीरकं
विसृज्य नत्स्यन्त्यकुतोभयं मुदा॥३०॥

यमेन तत्सङ्गमिते मयि त्वया
न पुत्रदारादि न नङ्क्ष्यति ध्रुवम्।
स रक्षमाणो हि कपोतपोतकं
सुरक्षसि प्राणिगणाननेकशः ॥३१॥

न धर्ममाहुर्बिबुधास्तमग्रगाः
परेण धर्मेण विहन्यते तु यः।
ततोऽविरोधं प्रतिपद्य तं मुदा
नृपाल वर्तस्व विवृद्धिमाप्नुहि ॥३२॥

स निश्चयं लाघवगौरवावुभौ
समीक्ष्य धर्मण्युपयुङ्क्ष्व बुद्धिमन्।
भवेद्यतो भूरिशुभं च जन्मिनां
मनो निधत्स्वाखिलमोदहेतवे ॥३३॥

निपीय तच्छ्येन वचोऽमृतं नृपो
रसेन चित्रं सुहितोऽद्भुतेन हि।
गिरानुजग्राहतरां गृहातिथिं
स्वधर्मवीरो गृहमेधिवर्च्चसा ॥३४॥

सुवर्णरूपो बहु साधु भाषसे
स किं सुपर्णो विहगोत्तम त्वकम् ।
असंशयं धर्मधियैव पश्यसि
न तेऽस्ति किञ्चिद्विदितं न लक्षये ।।३५।।

तथातिचित्रं तव वाक्यवल्गनं
विचारवल्गु श्रुतिसाधु भाषणम् ।
परञ्च मां भोः शरणैषिणः कुतो
यमाय दानाय युनक्षि पक्षिणः ।।३६।।

समीहतेऽयं मदसूनुप्रियान्स्वकाँ-
स्तवायमारम्भ उदीक्ष्य भोजनम् ।
तदन्यथा वा न न पारयिष्यते
मयाऽधिकं वा न न दापयिष्यते ।।३७।।

स गोवृषं वा मृगशूकरावपि
विनिश्चिनु द्राङ्महिषं च वा खग ।
स्वभक्ष्यमद्धाऽऽह्लियतां तु ते कृते
प्रणीयतां वा यदिहान्यदिच्छसि ।।३८।।

प्रनृत्य दंष्ट्वाऽऽततधूतपक्षकौ
निलीयमानेऽथ कपोतपोतके ।
क्षुधार्दितः प्राकृतिकीं गतिं श्रितो
नृपस्य शृण्वन्नपि वाचमाह सः ।।३९।।

वराहमुक्षाणमहो न वार्थये
मृगेण वाहद्द्विषताऽपि किन्नु मे ।
न भक्ष्यमिच्छामि कपोतकादृते
विसृज्य सैनं सुखितां समावह ।।४०।।

सनातनीयं स्थितिरार्यपुङ्गवैः
प्रणीयतेऽञ्जो विधिनैव निर्मिता ।
कपोतकानत्ति हि पत्रिपक्षिराट्
विहन्तुमेनां कथमुत्सहिष्यसे ॥४१॥

न सारमाज्ञाय नृपाद्य शिश्रियः
स मा कुमारीं कदलीं स्ववर्ष्मणा ।
न धर्मणः सूक्ष्मगतिर्निरीक्ष्यते
महर्षिभिः किन्त्वितरोऽत्र वत्स्यति ॥४२॥

हठे प्रगं लोभरसार्द्रचेतसं
विबुध्य तं प्राकृतिकीं गतिं श्रितम् ।
समाहितो भूतहिते रतः शिविः
पतत्रिमाहार्थवदेव निश्चयम् ॥४३॥

विना त्विमं पक्षिणमागतोऽतिथि-
र्वरिष्यसे यामपि कां हि कामनाम् ।
उपैष्यति द्राक्परिपूर्तिमेव सा
पुरा न मिथ्या ह्यवदं वदामि वा ॥४४॥

ददान्यहं खेचर तुभ्यमीश्वरः
समृद्धिमेनां शिबिभिश्चिरं धृताम् ।
कलत्रपुत्रादि तथा स्वजीवितं
समेषु कार्पण्यमथापि नाश्रये ॥४५॥

समे त्वमाचक्ष्व सदातिथिः प्रियो
समेति मद्धीतिमहो च मा कृथाः ।
शरीरकेऽपि प्रभवस्यमुष्मकिन्
मृगेन्द्र सन्तीक्ष्णनखाग्रघट्टिते ॥४६॥

ततः कपोताय निकाममीश्वरे
खगस्य तस्मिन्स्पृहयत्यवाङ्मुखे ।
क्षुधाकृशो बद्धमहास्पृहोऽपि सन्
नृपे दयावानिव वक्तुमैहत ।।४७।।

उशीनर स्निह्यसि चेद्विहङ्गमे
वपुः स्वमुत्कृत्य कपोतकेन च ।
समं समुत्तोल्य ददस्व मे व्रती
तदा नु मे स्याद्यदि तुष्टिरञ्जसा ।।४८।।

नृपो महात्माऽनुगृहीत इत्यमुं
सुवर्णमुक्त्वा ह्युपचक्रमे ततः ।
चकर्त्त तस्मै स्ववपुर्मनोहरं
खगाय शीघ्रं मुनिविप्रहर्षदम् ।।४९।।

चकर्त्तं कृत्त्वा पुनरप्युपाददे
समं समुत्तोल्य खगेन दृष्टवान् ।
धृतस्तुलायामथ सोऽतिरिच्यते
शिशुः कपोतः शिबिमांसपिण्डकान् ।।५०।।

उशीनरः सोऽधिकमुच्चकर्त्त च
समं तुलायां निदधे खगेन च ।
प्रभिद्य विच्छिद्य शरीरकं मुदा
कपोतकस्त्वग्र्यतयाऽतिरिच्यते ।।५१।।

यदास्थिशेषस्त्वशिनट् स तस्य वै
नृपस्य देहः प्रविकाशिवर्च्चसः ।
तुल्याऽप्यपूर्णा न जगाम तुल्यतां
तदाऽऽरुरोह स्वयमेव पार्थिवः ।।५२।।

अथाववुर्धीरसुगन्धिवायवो
दिशः प्रसन्ना विमलाश्चकाशिरे ।
तथान्तरिक्षं च विमानसङ्कुलं
बभूव दिव्यध्वनिभिः समन्वितम् ।।५३।।

द्विजर्षिदेवासुरनागयक्षसां
सरक्षसां साधुवचांसि शृण्वताम् ।
प्रभूतहर्षोद्गमशालिनां नृणां
परः प्रमोदोऽनुमितिं पराभवत् ।।५४।।

चतुर्मुखो विष्णुरुमापतिः स्वयं
महर्षिदेवर्षिगणैरभिष्टुताः ।
सुराश्च सर्वे परिवारभूषणाः
कुबेरपाशिप्रमुखाः समागताः ।।५५।।

अनन्तरं श्येनवरो जगाद तं
नृपं न पिप्रार्थयिषुर्न वाऽभवत् ।
गजं सिताभ्राभमुपारुरोह यद्
वपुर्विसृज्यान्यदिवाहरन्हरिः ।।५६।।

कपोतकः पोतकपक्षितां तदा
विसृज्य जज्वाल जटालमाननम् ।
निदर्शयामास दधद्धविर्भुजो
वपुर्विशेषं स नृपालमौलये ।।५७।।

ततस्त्रिलोकीपतिराह तं नृपं
नृपाल धर्मेण विवृद्धिमाप्नुहि ।
प्रजासु वर्तस्व तथा समाः शतं
जिता हि लोका निखिलास्त्वया शुभाः ।।५८।।

अहं कृशानुश्च कपोतरूपभा-
गयं न राजँस्तव मांसलोलुपौ ।
इहाऽऽगतौ प्राघुणिकौ तवान्तिकं
सुधर्मजिज्ञासुतयाऽत्र मा शुचः ॥५९॥

समीहितं सिद्धमिदं तदावयो-
र्न मांसखण्डानि विशांपते तव ।
इमानि तान्यब्जसहोदराणि वै
यशोंऽशुरूपाण्यभिभूय रोदसी ॥६०॥

प्रजापतिस्तं वृषदर्भमद्भुते
रसाम्बुधौ मज्जनशीलचेतसम् ।
समञ्जसं वाक्यमुवाच सुन्दरं
न ते समोऽभूद्भविता न वा शिबे ॥६१॥

त्वया श्रुतं यद्भविता तथैव तत्
समाः शतं पालय मेदिनीमिमाम् ।
अनन्तरं द्यामुपगम्य शाश्वतान्
स भुङ्क्ष्व भोगान्निखिलान्महीपते ॥६२॥

मृणालिनीकोमलमिन्दुभास्वरं
यशः प्रकाशं परिवृत्य रोदसी ।
प्रतिष्ठितिं यास्यति लोकसङ्गता-
मखण्डकालं विहसद्धि चन्द्रिकाम् ॥६३॥

तमर्थमम्भोजनिवासिनीप्रियो
गभीरघोषस्त्वदिदीपदच्युतः ।
उवाच मन्द्रं च स नन्दिवाहनः
शशाङ्कभासा सितयन्दिशो दश ॥६४॥

नरेन्द्र संभुज्य समाः शतं महीं
महेन्द्रभोगान्सह वृत्रशत्रुणा ।
अखण्डकालं परमेऽक्षरे ततः
शिवे परब्रह्मणि शान्तिमाप्नुयाः ॥६५॥

इति प्रदार्यर्षिगणैरभिष्टुता
वरान्सुरेशाः परिवारशोभिनः ।
यथागतं जग्मुरुमेशमाधवौ
विरिञ्चिमुख्याश्च दिवं विमानवत् ॥६६॥

नृपश्च धर्मेण ससागरां महीं
सशान्तिरक्तां शरदां शतं ततः ।
क्रमेण सम्भुज्य दिवं समीयिवान्
विकाशमानो वपुषा सुवर्च्चसा ॥६७॥

इति श्रुतिः पुण्यजुषां श्रुती नृणां
पुनाति या तामहमन्वबीवदम् ।
भवेद्बुधानां यदि तोषकारणं
ममापि चित्तं परिपोषमाप्नुयात् ॥६८॥

श्रीकान्तपतिः काव्याभिरतिः
भव्यान्विदुषः श्रुत्याप्यपुषत् ॥६९॥

निर्वाणामृतम्

अनुभूयमान आत्मा ज्ञानं च मतं तदेव विद्वद्भिः ।
क्षणिकत्वेन च तत्स्याद्बुद्धस्यैकान्तनिर्वाणे ।।१।।

व्यवहारसेवया यो जीवति सधनः समग्रवर्गेषु ।
नैयायिकः स चैनं रक्षत्यन्यत्र केवलं नार्हम् ।।२।।

मातङ्गपतङ्गादिषु विज्ञानं विकासतीह भिन्नार्थम् ।
आत्मान्यत्वे ज्ञानं भिन्नं भिन्नं भवेत्सुखोत्पत्तिः ।।३।।

क्षणिकं ज्ञानं न भवेदात्मा ज्ञानं भवेन्न च क्षणिके ।
क्षणिकं चात्मा च ततो द्वयमेतन्नीतिकारमतदृष्टौ ।।४।।

सर्वं सर्वस्माद्यदि क्षणिकं ह्यात्मा प्रकल्पते मृग्यम् ।
तस्मादात्मा क्षणिकं न क्षणिकं स्यात्कदाचिदात्मा तु ।।५।।

बीजाङ्कुरभावो न च सहकृतविज्ञानसंततेस्तु स्यात् ।
तद्विच्छेदो दृष्टः परिणामिनि रम्यता न चात्मत्वे ।।६।।

ज्ञानात्स्वरूपकस्य प्राप्तालोको भवेन्नहि क्षणिके ।
तस्मात्क्षणिकं ज्ञानं नित्यस्याभासकल्पमेवैतत् ।।७।।

नित्यं नित्यं नित्यं तत्सुखरूपं च मन्यते नित्यम् ।
नोचेन्मोक्षे न सुखं तस्य विरागाच्च दुःखसंप्राप्तिः ।।८।।

ज्ञानं तज्ज्ञेयतमं तस्मिन्ज्ञाते भवेत्स हि ज्ञातः ।
ज्ञानात्तस्य पृथक्कृतिरिष्टा सर्वस्य लब्धसत्प्रकृतेः ।।९।।

ज्ञाने ज्ञेये चात्मन इन्द्रियवर्गो विजेतव्यः ।
कर्मनिबद्धः सोऽपि च नुरनीशस्य प्रयाति विषयेभ्यः ॥१०॥

कर्मनिबद्धस्य च नहि निर्मोक्षः स्यात्तथोररीकार्य्ये ।
ज्ञाने त्वात्मनि मायाकृतो ह्युपाधिः कथन्वचिज्जातः ॥११॥

लुलुपे यस्तद्रूपं निर्मलमाकाशवत्परमरम्यम् ।
अन्तःकरणमुपाधि प्रथमो जीवत्वभावसंप्राप्तयै ॥१२॥

तस्यैकान्तं विलयं मोक्षं वेदान्तिनः प्राहुः ।
आत्मनि सद्बुद्धिश्चेदसन्मतिः स्फुरति सर्वथोपाधौ ॥१३॥

सर्वत्रैव च सा चेन्मोक्षः सद्भाववासनादाढर्यात् ।
विषयरसम्प्रयोगश्चेतोविलयाय पूज्यते प्रथमम् ॥१४॥

स च सद्बुद्धया लुप्तेष्वेतेष्वन्मुखेषु खगणेषु ।
अन्तर्बहिः सती चेत्संवित्पश्येन्न सा हि किञ्चिदसत् ॥१५॥

कर्माणि तां न चेशां वशमानेतुं निबध्नन्ति ।
श्रद्धा सुकृते कृतिनः प्रारब्धमपेक्ष्य जायतां न कथम् ॥१६॥

फलसन्त्यागश्च तथा नान्यत्र ब्रह्म वित्तमात्तात ।
किञ्चित्कर्तुं नेच्छा प्रभवति यस्यात्मनि प्रलीनस्य ॥१७॥

ब्रह्मज्ञो ब्रह्मैष स्यात्सद्भावेन वासनादाढर्यात् ।
कुरुते कर्मनिरिच्छः श्वसिति निरीहोऽश्नुते क्षुधाहीनः ॥१८॥

कश्चन जीवन्मुक्तो नाम नृलोकं हि पावयन्सङ्गात् ।
ज्ञानं स्वभावमेके जडतां प्रकृतिं तथाऽऽत्मनः प्राहुः ॥१९॥

नायं जडो न सायं कथमद्वैतं तथैतयोः कल्प्यम् ।
या निर्वचनानर्हा मायां तामल्पधीः कथं विद्यात् ।।२०।।

सङ्करयति परमे नामचितं चिद्रूपकेण सत्वेन ।
मुच्येत्कश्चन जन्तुर्नैनां परिगृह्य शम्भलीकल्पाम् ।।२१।।

त्यागोस्याश्चन दुर्गो विज्ञानं शरणमेकमाश्रित्य ।
क्षणिकं ज्ञानं विनयः परमं विज्ञानमात्मनो रूपम् ।।२२।।

क्षणिकं तत्सन्ततिरपि विज्ञानावाप्तिकारणं रम्यम् ।
जाड्यात्तपांसि मुख्यान्येकेषां प्रकृतितत्त्वकल्पेन ।।२३।।

आमुक्तेः संक्षेप्यो यतोऽप्यसङ्गैः क्रियायोगः ।
जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजा एव सिद्धयः सर्वाः ।।२४।।

मोक्षस्तेषु कथं नेत्येकेषां कल्पना विदुषाम् ।
कर्मासङ्गं कर्तुं न प्रभवेद्वाच्यमेत्र नेत्थं स्यात् ।।२५।।

तदनन्तरमपि दृष्टो यत एवास्याप्यसङ्गता लोके ।
किञ्च विरामः कर्मण इष्टो निर्वातदीपसरसीषु ।।२६।।

सद्वादे तु भवेत्सत्तथा सदैक्यं समापन्नम् ।
एवं रीत्या शाङ्करमतमपि कर्मण्युदारतां लेभे ।।२७।।

निष्क्रियतामप्युक्त्वा पूर्णपरब्रह्मभक्तिसंप्राप्त्यै ।
भक्तिः स्वरूपसेवाऽऽत्मनोऽनुसन्धानमप्यनेकेषाम् ।।२८।।

ज्ञानं भक्तिः कर्मेत्यैक्यं सर्वं जगत्यथापन्नम् ।
ज्ञानादरस्तु भक्तिर्विज्ञानं भक्तिसंप्रतिष्ठा च ।।२९।।

कर्मानर्घ्यं साधोस्तयोर्विकाशाय यत्पुनः क्रियते ।
देवं नमस्यतः स्वं गुरुमपि नान्यं प्रपश्यतो नित्यम् । ३०॥

सर्वत्र दशाशुद्धिर्भावनिबद्धस्य जीवलोकस्य ।
भावनयैव समस्तं जगद्विजयते प्रबुद्धयोगिजनः ॥३१॥

ख्यातिं परां जगाम क्षितिपतिवृद्धो विदेहराजश्च ।
बुद्धेनान्या ह्यास्था नो रूपं शङ्करस्य खल्वन्यत् ॥३२॥

दर्शनकारा गोतमकणादकपिलादयोऽप्याहुः ।
एषैव तपोरूपा ह्येनामेकां फलन्ति सुतपांसि ॥३३॥

गौरवमेषैव गुरोर्गुरुरेनां यच्छति स्वशिष्येभ्यः ।
द्रढयत तामेवैनां नित्यं विज्ञानमेकमाश्रित्य ॥३४॥

तत्सहकारेण यतो ह्येषा कल्पद्रुवल्लरी भवति ।
क्षणिकं वा यदि नित्यं विज्ञानं पुरुष एव वा ह्यन्यः ॥३५॥

आत्मानं परिचितयति सर्वात्मानं तु भावनैवैका ।
एषा नदीप्रवाहोपमा क्षणिकबुद्धिसन्ततेस्तुल्या ॥३६॥

रक्ष्या सर्वैर्विज्ञैरेकं सुस्थं तु लक्ष्यमालोच्य ।
भावनयैव समाधिः काले सर्वार्थकारकः फलति ॥३७॥

योगप्रथमद्वारं विद्वांसोऽतो हि भावनां प्राहुः ।
इयमेका विष्णुपदी ह्यपरा या सैतयैव संभूष्या ॥३८॥

इयमेव मनोदन्तिनमङ्कुशवत्स्थापयेद्वशे वशिनाम् ।
लोके सर्वो लोकः सुधिया निष्पक्षपातमालोच्यः ॥३९॥

तत्रैव भावनायाः प्रथमा शुद्धेर्यतः परीक्षा स्यात् ।
विषयेभ्य इन्द्रियाणां प्रत्यवहारोऽपरो भवेद्योगः ॥४०॥

यं न विना खलु सिद्ध्यति विदुषोऽप्यस्यात्र भावना क्वापि ।
मैत्री करुणा मुदितोपेक्षा स्थाने यथोपयोगञ्च ।
आचीर्णा योगिजनं निर्भयमुपकल्पयन्ति भवबन्धात् ॥४१॥

सङ्गे गुरुर्महात्मा निस्सङ्गस्यात्मनैव खलु कार्य्यम् ।
निःसङ्गसङ्गिनस्त्विह देवो गुरुरिष्यमाणशुभभक्तिः ॥४२॥

आत्मप्रतुष्टिः

काष्ठाश्मखण्डमपि चेतनयेन भिन्न-
मद्वैतभावनिभृतेन पुरा न दृष्टम् ।
तेन त्वयास्म्यवगतोऽहमिवात्मनोऽन्यो
द्वैतं जनस्य गिरिश त्वयि तन्मयाऽऽस्ताम् ॥१॥

अध्याससान्ध्यतमसाऽऽन्ध्यमुपेयुषीव
ज्योतिःकलाऽप्यविकला न सती यदि स्यात् ।
लोके परापरगुणाऽऽकलना परीक्षा
स्याच्छुक्तिकाऽपि रजतं पयसी न भिन्ने ॥२॥

किन्त्वीश नास्ति नियमोऽद्य परीक्षणे य-
न्नो निर्गुणो गुणिपदं लभते प्रयत्नात् ।
क्षान्तिर्दया ननु परीक्षयितृञ्जुषन्त्यौ
न्याय्यात्पथः प्रतिपदं क्षिपतः स्म कामम् ॥३॥

त्वं निर्गुणः परगुणाननुरुध्य तिष्ठन्
न ध्यायसि श्रुतिकटुं परिवादकाण्डम् ।
किन्त्वौचिती किमु गुणाऽऽकलना परेषां
स्यान्निर्गुणे त्वयि परा श्रुतिलोकसिद्धा ॥४॥

क्षिप्तं धनञ्जयमुखे कनकं कलाद-
पुंसाऽपराद्धमिव सव्यवमर्षमाशु ।
कम्पं समेत्य पयसस्तुलनामुवाह
को वा द्रुतो न हृदयेन परीक्षणे स्यात् ॥५॥

ब्रूमोऽत्र किन्नु बहुशः स्वयमीशिताऽपि
काले परीक्षणकृतां विपदं समेत्य ।
अन्तर्भवँश्च चिदचित्सुचलाचलस्त्वं
शून्येऽपि निर्वृतिमुपैषि न बन्धशून्याम् ॥६॥

एवंविधां मृदु बुधैरपि बुद्धिवेद्यां
वस्तुस्थितिं समभिवीक्ष्य परीक्षणीयाः ।
बाला वयं जडधियो भवतो भवेम
पात्याः परं न जटिलोच्छ्वसिताऽऽधिगर्ते ॥७॥

त्वय्येव नाथ निभृताखिलजन्तुजात-
पुण्यांहसां निखिलवित्तिमयी परीक्षा ।
क्षान्तिर्दया परमहो कथयाद्य नाथा-
नाथे कथं विरुदितोऽनपराधगर्भे ॥८॥

लोकेषु भावुक विधीनपि साध्वसाधु
संवर्त्तयन्न लभसेऽपि कुतो विगानम् ।
ह्यस्मादृशानिह विहाय न कश्चनेष्टे
व्याजस्तुतिन्निगदितुं जनतेशितारम् ॥९॥

यातोऽसि कुत्र विषये विलयं वियात्
यत्राक्षिणी नच न वाङ्मनसे लभेते ।
स्फोटस्तवैव निलयाय पदार्थसार्थ-
स्तत्रैव तेऽपि विलयः प्रकृतेः समस्य ॥१०॥

कालं विधाननियती प्रकृतिं यदृच्छां
भूतानि योनिपुरुषावणुकं त्र्यणुश्च ।
भिन्नानि सम्यगभियुक्ततमा निदाना-
न्याहुः समस्तजगतां कतमस्ततस्त्वम् ॥११॥

व्यष्टिः समस्तजगतां न निदानमेषां
विज्ञैर्विरुद्धमहसां न समष्टिरिष्टा ।
नान्योन्यमुद्यमभरेऽप्युपकुर्य्युरेता-
न्यध्यक्षमप्यतुलितावयवं व्यनैषुः ॥१२॥

अन्योन्यमिष्टवपुषां प्रतिबन्दितैषां
साशावकाशविदशा विषयाः सदोषाः ।
आत्मेतरेतरपराश्रयचक्रकाद्या
बाधादयोऽपि मुहुरत्र परापतन्ति ॥१३॥

कस्त्वं कुतोऽस्यथ कथं तव वा वयं के
न्याय्या दयालुरथवा नृषु ते प्रवृत्तिः ।
न्याय्यास्तु चेत्करुणयाऽलमलं प्रपत्त्या
ऽऽसक्त्याप्यलं त्वयि तु यद्यनुकम्पिनी सा ॥१४॥

आत्मैक्यमात्रमनने नहि भेदभूमा
संसारपारतरणं मम दुःखसीमा ।
तन्नाथ नात्र न तव स्तुतिमादधामि
स्वानन्दमात्मसुखमेव न नोद्वहामि ॥१५॥

नाथ त्वदङ्घ्र्यनुगमाय ममानुगोऽपि
स्वल्पं विकल्प्य परिकल्पत इत्युदाशा ।
मार्गस्य किन्तु विषमत्वमवेक्ष्य काले
दूनोऽवलम्बविरहेण ततः परासे ॥१६॥

जन्माद्यमुष्य जगतो भवति स्मरारे
त्वं मूलमस्य विभुरव्यय ईश्वरोऽसि ।
तत्त्वं कुतो जगति न त्वयि संसृतिर्य-
त्त्वत्तो व्यपैतु जडताऽऽदिपदार्थमात्रात् ॥१७॥

मायाकृतैव जडता जगतीति चेत्स्यात्
त्वत्तो हि ते प्रियतमा न विभिद्यते वा ।
अद्वैतमात्रमननं प्रणिहन्ति भिन्ना-
ऽभिन्नाभवत्यपि पुनर्विदधाति जाड्यम् ॥१८॥

किन्त्वत्र देव सति चित्कुत आगतैव
जाड्यं व्यपोह्य हृदये विमृशन्न जाने ।
दुःखं कुतो न सुखमात्रमिदं कुतो वा
स्वस्मिन्बिभर्त्ति सुखदुःखशतं तु विश्वम् ॥१९॥

जाड्यं व्यपोह्य सदनुग्रहणेन शक्ते-
रद्वैतमस्ति परमस्ति तु शास्त्रबाधः ।
शास्त्राणि शक्तिजगुणान्व्यतिरेचयन्तो-
ऽप्यद्वैतमाविदधतेऽद्भुतमत्र चित्रम् ॥२०॥

ज्ञानस्य शक्तिरिति सद्व्यतिरेकलक्ष्यं
शक्तौ जडत्वमिति चेदसि सन्दिहानः ।
केनोत्तरिष्यसि पथा त्वमथ द्वयत्वं
जाने न नाथ विगलन्महिमाऽनुजाने ॥२१॥

दृष्टा श्रुताऽप्यनुमिता न कदापि शक्तिः
किञ्चित्करी भवतु या व्यतिरिच्यमाना ।
शक्त्या विना नच पदार्थचये प्रभुत्वं
शक्तेर्गुणाः सह चरन्ति पदार्थसार्थैः ॥२२॥

दृष्टान्तसाध्यविकलेऽपि समर्थनीये
पक्षावधारणपुरस्सरहेतुवादे ।
आभासहेतुविहतिप्रतिबन्दितादि
दोषाय सर्वमिति खर्वमतिर्भवामि ॥२३॥

ऐक्यं हि तेऽभिदधते परमात्मजीवा-
त्मानावुभावपि चितासति सङ्गृहाणाः ।
चेन्नाथ नान्यदिह वस्त्विति किं ब्रुवन्ति
मीमांसमानमनसा न लभेऽत्र शर्म ॥२४॥

उद्भूय शक्तिरपि नश्यति नात्र सत्त्वे
स्यात्तत्कथं प्रविलयः प्रकृतेऽपि तस्याः ।
चेन्नाथ वक्तुमभिवाञ्छसि तन्मयापि
सत्त्वे प्रकृत्युपमिते गदितं न किं स्यात् ॥२५॥

यन्निष्क्रियस्य विगुणस्य सतोऽपि नाथ
नो शक्ष्यतेऽपि प्रकृतिः परिचेतुमार्य्यैः ।
सत्ता कथं न गदिताऽगदिता समा स्यात्
तस्येति लौकिकमतेर्वद बोधयन्माम् ॥२६॥

दुःखं ममापि हृदये पुरसूदनेदं
शक्तिं पदार्थमतिरिच्य कथं लभेयम् ।
किं वा पदार्थमपि सद्गुणभावशून्यं
बोद्धुं यते स क इव व्यवहार्यपि स्याम् ॥२७॥

एकाच्चितः सत इहास्ति परं न वस्त्व-
त्यज्ञानशान्तिनियतः समयस्तवैव ।
लोके तु तादृशसतो न लभे प्रबोधं
सत्त्वां सदा गुरुतमं न कथं मृशामि ॥२८॥

क्षुब्धेन्द्रियो परजनाननुगच्छदिच्छो
लोके सुखाय हृदयस्य च शान्तयेऽयम् ।
बाढं प्रमाणविलये परिखिन्नबुद्धिः
प्रावेशिकीं मतिमुमां बिभृयां सुखाय ।।२९।।

कश्चापि शास्त्रविषयः परितोषदायी
लभ्येत वस्तुगतितो विमृशन्न जाने ।
दोषान्विचिन्त्य प्रविविच्य च बाधभेदान्
नातोऽन्धनास्तिकमतिर्विमतिर्न चाहम् ।।३०।।

निःसारतानुसरणे परिणत्युपेयं
शून्यत्वमेव तदलं परितापशान्त्यै ।
सन्मूलकानुगमने सदिहैव लभ्यं
सत्ता स्थिरा भवति देवसमागमेन ।।३१।।

स्वाभाविकं मयि विरक्तयनपायि धाष्ट्यं
त्वय्यात्मनि प्रभुवरेऽस्ति न चाप्यवाच्यम् ।
मौढ्यं सदैव विदधाति हि बालबुद्धि-
स्तन्नाथ नात्र भवतोऽपि बिभेमि किञ्चित् ।।३२।।

मूलं कदाचन सुतर्ककृतेः कुतर्को
नित्यं फलत्यपि विवेककृतः प्रयत्नः ।
मोक्षः सदैव निखिलात्मविचारजन्यो
नैष्फल्यमेति तदहो न मम श्रमोऽयम् ।३३।।

त्वं ह्यन्तरा यमयसीह निदानमीश
त्वां ये नमन्ति निपतन्ति न ते नराग्र्याः ।
ते कर्मणां नियमलङ्घनमुत्कचित्ताः
स्थैर्येण नाथ समये परिलोकयन्ति ।।३४।।

चन्द्राननं तव विलोकयतां नराणां
ज्ञानं समुद्भवति कल्मषशून्यमेकम् ।
कर्माणि ते तदनुयान्त्यवधूय शम्भो
तादात्म्यमेवमनघस्य तवैव नाथ ॥३५॥

मूर्तिस्तवैव खलु चिच्छिवताऽभिमाना-
त्सत्त्वं त्वदेकनिलयं गुणशुक्लकान्त ।
क्लान्तं मनोऽन्नलमपीश रजस्तमोभ्यां
त्वामेव यन्मृगयते शशिकान्तदेहम् ॥३६॥

चन्द्रोत्थितामपि विभां न जनोऽनुरागा-
त्पश्येत्कदाचिदपि नाथमतं ममेदम् ।
चेत्स त्वदेकशरणो न भवेत्कलाना-
मेकायनं बुधगुरुर्जगति द्विजाग्र्यः ॥३७॥

गौरी प्रभा तव तनोति तथैव सर्वं
रागात्मिकाऽरुणतनुः करुणाऽप्युमा सा ।
गौरीति नाम लभते यत एतदग्र्यं
तस्याः सहायमितरन्नहि रोचयन्ति ॥३८॥

को वा गजाननगुरुं गिरिजासहायं
गीष्पत्युपाश्रितपदं विपदामवासम् ।
त्वामेकमूर्तिमनघं चिरसुप्रशान्तं
शान्तोनिषेवितुमिहैव जनो न चेच्छेत् ॥३९॥

केषां न चन्द्रकिरणैः परिमोदितानां
चाञ्चल्यवर्जितमनोऽतुलवैभवानाम् ।
त्वत्तो न लब्धिरुपमारहितस्य तस्य
निःश्रेयसस्य विपुलाभ्युदयस्य वापि ॥४०॥

ये जीवनं स्वमवयन्ति नरा न च त्वां
ये श्रौतमार्ग उपयान्ति वृथेति बुद्धिम् ।
तेषां भवेन्न कुशलं मतमेतदस्य
प्राणेश्वरोचितरुचेः करुणोपमस्य ॥४१॥

किं बोधयानि भगवन्नहमात्मदुःखं
यज्जायते स्वयमिदं न तवैव वेद्यम् ।
सर्वज्ञ नाथ तुलनारहितस्वमूर्ते
माङ्कीर्तिभाजन निरस्य न दीनबन्धो ॥४२॥

अन्धुर्जगत्त्रितयमेव सतां मतेन
प्राप्तं सुखं भवति दुःखवदेव हेयम् ।
एकैव मूर्तिरभवस्य तवोज्ज्वलाभा
स्वाभासितं प्रतनुते बत जीववर्गम् ॥४३॥

साधारणोऽपि बलवान्प्रभवत्यनल्पं
मामल्पशक्तिमिह मोहयितुं जनोऽयम् ।
सर्वौजसस्तव गुणैकनिधेः पुरारे
का तोलना मयि तथैव न वोधयस्व ॥४४॥

लोकेऽबलं हि सबलः स्वमतानुसारात्
कर्माणि कारयति नाथ यथैवमेव ।
श्रीमाननुत्तमपुमानहमादिजीवान्
नास्त्यत्र संशयलवोऽपि सुनिश्चयान्मे ॥४५॥

शक्तिर्निहन्तुमिह नाथ तवेन्द्रजालं
यस्मादलंकुरुत एतदमुं त्वदीयम् ।
बाधां जहात्वयमये तव पादसेवी
विश्वासपात्रमसि केवलमस्य भूयः ॥४६॥

एतत्तवैव कृपया विशदस्य चित्तं
वित्तं बभूव तव रक्षणकल्पनार्हम् ।
अस्योपकारमिति संबिभृयां स्वमूर्ध्ना
नाथावनौ प्रणिपतेस्तव रूपदृष्टिः ॥४७॥

नाथ त्वदेकशरणः करुणावरोऽहं
सर्वांस्त्वदीयचरणाम्बुजसेवकांस्तु ।
मूर्ध्नैव संप्रणिपतामि न मित्रवर्ग-
द्रोहो मतस्तव विभोः प्रभवस्य यस्मात् ॥४८॥

तुभ्यं समर्पितमतिर्भुवने स्वकर्म-
जातं त्वयैव परिचालितमुद्दिदृक्षे ।
नाथ प्रकीर्णविषयैरनुबिद्ध एष
आत्मा यतस्तु भवतैव हि मोचनीयः ॥४९॥

श्रान्तस्य बुद्धिरहितस्य सहायहीन-
स्वार्थस्य नाथ मम चेन्न परार्थदायी ।
त्वं साह्यमिच्छसि ततोऽस्म्यवशो विनेयः
त्वद्दृष्टिपातरहितः खलु चिन्तयामि ॥५०॥

ऐश्वर्य्यमीश्वर कथं भवतीति दृष्टं
लोके मया शतसहस्रश एव नाम ।
किन्त्वस्य केवलमभून्नहि साधुरूपा-
लोकेऽपि रूपणमतोऽपरथा कुतस्तु ॥५१॥

वायुस्त्वमेव जगतामसवो निदानं
सूर्य्यस्त्वमेव भुवनेऽसि दिनस्य हेतुः ।
इन्द्राग्न्यनन्तयमवारिपपद्मजानां
रूप्यस्त्वमेव धनदोऽसि तथेश्वरस्त्वम् ॥५२॥

माभूदयं खलु जनोऽतिनिहीनबुद्धिः
स्वोत्कर्षदर्पितमतिस्तु ममेति याच्ञा ।
किन्त्वस्य यातु हृदयान्न कदापि नाथ
त्वद्दासताभिमतिरित्यपि भिक्ष्यसे त्वम् ।।५३।।

किं वा निवेद्यमिह नाथ तवाष्टमूर्त्ते-
राकाशतोऽपि परमा विभुताऽस्ति यस्य ।
यो जीवनं प्रभविताऽथ चराचरस्य
वेदैर्निदानमिति यः समभिष्टुतश्च ।।५४।।

तुभ्यं समर्पितमतिः प्रचरामि लोके
लोके न चापरमिह स्वहितं वरेण्यम् ।
कारुण्यसिन्धुमनघं मृगयामि कं वा
देवादृते सुकुशलं तुलनाविहीनम् ।।५५।।

प्राच्योपचाररहितो विगुणोऽतपस्वी
त्वत्पाददृष्टिपरिपूतमना भवामि ।
चेच्छैशवं न गणयेस्त्वमुमापते मे
श्रेयो भवेन्नियतमेव कदापि काले ।।५६।।

चन्द्रार्धशीतलतनुः समुपार्हसि त्वं
मामल्पबुद्धिमिह सान्त्वयितुं शिशुं स्वम् ।
कष्टे न रोदिमि यतो बहवः सुदृष्टा
बालास्त्वया परमिकां गतिमाप्तवन्तः ।।५७।।

यद्यप्ययोग्य इह नाथ भवामिं तेऽहं
दासः सदानन इति प्रचरानुकम्पाम् ।
मार्गोपदेशक इवासि यतः पशूनां
पाशं करे कृतवतः प्रभुता तवैव ।।५८।।

ये खल्वमी मयि जने बत साक्षिणस्ते
रात्रिंदिनं रविशशी ज्वलनो यमश्च ।
नैते विरुध्य हृदयं परिजल्पतो मे
दासस्य चारु कथमप्युपलब्धयत्नाः ॥५९॥

चेत्साक्षितां हृदयमेव पुनर्गृहीत्वा
साध्वाचरिष्यति विभोर्न पुरोऽस्म्यदण्डचः ।
नित्यात्मनां क्षणिकलेशत औपरागाः
स्युर्नश्वराः खलु धियोऽपि यथाभ्रियस्तु ॥६०॥

चाण्डालवर्त्मपतितामपि गर्भदासीं
साधुः समुद्धरति यः स्वनयामृतेन ।
तस्यैव पौरुषमुदेत्यभयङ्करस्य
प्रज्ञा ममेति सुखिता खलु नाथ मत्वा ॥६१॥

सत्यं स्वपौरुषमवेक्ष्य कथञ्चनापि
श्रान्तो न बुध्यति जनः पदवीन्तवेमाम् ।
कर्माणि चेत्सुनिभृतं विनिभालिते स्युः
सूत्राणि धारयसि तानि करे त्वमेव ॥६२॥

एषां नृणामपहरन्नपि दासभावं
त्वं किं विमुक्तिमिह नैव सदा ददासि ।
येषां प्रभेदविलयेन भवन्नभेदः
प्रख्यापयेत्परतरं परमं स्वभावम् ॥६३॥

उत्तिष्ठतामिह जनो न बत त्वमेव
दैन्यं न सन्त्यजतु किन्तु भवानपीश ।
क्षुद्रां विहाय पुरुदुर्बलतां हृदस्तु
मार्गे युवां विहरणाद्व्रजतं किलैक्यम् ॥६४॥

क्रान्त्वा सुमेरुशिखरं न सुखी भवेन्ना
तुष्येद्यथा परिचरन्निह सेवया त्वाम् ।
तस्यां मनो मम सजत्तव भूतभर्तः
साहाय्यमिच्छति कृते सुकृतेऽपि नाथ ।।७७।।

नाथ प्रमाणमसि तुल्यमतिस्ततोऽहं
न प्रार्थनावसरमीश लभे कथञ्चित् ।
किन्तु प्रतीपमिह याति न कोपि जीव-
स्त्वत्तः सदेति परिचिन्त्य नतिं दधामि ।।७८।।

भूयः परीक्षितमिदं विभुनाऽऽत्मनैव
श्रव्यं तवेति भगवन्नधुना ब्रवीमि ।
चित्ते यदास्य तव चिन्मयचारुमूर्त्तिः
स्फूर्तिं बिभर्त्ति बलवानिव जायतेऽयम् ।।७९।।

नादेयमस्ति खलु यस्य कथञ्चनापि
किञ्चिद्धि नाथ सदिति प्रथितं तु वस्तु ।
तस्येश्वरस्य चरणौ शरणं वरीत्वा
शान्तिं लभेत न जनः खलु चित्रमत्र ।।८०।।

इच्छा विशेन्न पुरुषं त्वनुदारमूर्तिः
कर्माणि सन्तु सुविचारितकल्पितानि ।
भक्तिर्भवेत्त्वयि जनस्य भवन्तु लोके
सौहार्दसुन्दरधियोऽपि नराः सुखेन ।।८१।।

दोषाकरोऽस्मि न कलङ्कशतेन दुःखी
तद्भूषणं तव पदाम्बुजलोलुपस्य ।
स्वार्थी न कोऽपि मदिहास्ति परस्तु यस्मा-
ज्जिह्रेमि नाथ हृदयाभिनिवेदनेऽपि ।।८२।।

मान्द्यं मदोऽधृतिभयौ फललोलुपत्वं
रोषः प्रहर्षविरतिप्रमुखा विसृष्टाः ।
त्वत्पादपङ्कजरतिः सुखभाजनं स्यां
केनेति नाथ गतिरस्य ममापि चिन्त्या ॥८३॥

सन्तोषकं वितर शान्तिपदं पदाब्जं
ध्यानाय नाथ हृदयाय मयाऽऽदृताय ।
यत्सेवयैव नलिनीव पराऽप्युमेयं
भूयोऽब्जयोनिरचनासु भवेत्समर्था ॥८४॥

बुद्धिर्नहि स्वहितवीक्षणमस्य यस्य
शक्नोति मुग्धधिषणस्य कदापि कर्तुम् ।
तस्येश्वरत्वमिह देहि करावलम्बं
श्रेयो लभेत यमृते ननु नैव देही ॥८५॥

सर्वे वदन्ति ननु दुष्टमतिं निकृष्टं
भ्रान्तं जनं सुपुरुषा अपि दत्तचित्ताः ।
निर्बुद्धिताहतमतिस्त्विह दुर्बलत्वा-
ल्लोके कुकर्म चरतीति मता प्रथा मे ॥८६॥

आत्माऽवशो भवति यस्य न तस्य कार्य्यं
कार्य्यं जितेन्द्रियकुलस्य न चापि किञ्चित् ।
कार्यं त्वदङ्घ्रिपरिषेवणमेव तेन
त्वस्यापि नाथ विदितं हि तदेकलक्ष्यम् ॥८७॥

एवं जनस्य परिहर्त्तुमुमेश लोकं
जाता मतिर्य्यदि तवाद्य नतिं विधातुम् ।
कस्मान्न तस्य सुकरोऽस्तु स नाथ पन्था
यस्त्वादृशेन पतिनैव सना सनाथः ॥८८॥

तुभ्यं मतिर्मम सदैव कलङ्किताऽपि
तुभ्यं नतिर्मम सदैव मदाविलापि ।
भूयो गतिर्मम मतस्त्वमदस्त्वलापि
ते मन्मनो हरति चारुतरं कलापि ॥६५॥

आचार्य शाधि विनयं ह्यविनीतशिष्यं
तुष्येद्यथा खलु जनस्तव कर्मणैव ।
अन्ते वसन्त इति नाम विरुद्धचेष्टा
एते सदैव तु भवन्तितमां विधेयाः ॥६६॥

स्वस्यानुरूपमिह चेष्टत एव नाथ
सर्वो जनः खलु जगत्युचितावतारे ।
तत्रापि बुद्धिरियमीश बिभेति कस्मै
नामेति वेद्यमिदमस्य महेश्वरस्य ॥६७॥

स्वार्थेऽवतिष्ठत इति क्षमते जनोऽयं
साम्यं समीक्ष्य पुरुषे बत शुद्धबुद्धिः ।
अर्था न ते त्वयि कथं ह्युपमाविहीने
क्षान्तेः क्रमोऽस्त्वतिहृदा विकलोऽपि दूये ॥६८॥

जन्मेदमस्य विविधस्य जनस्य कस्मै
स्वायेति निश्चिततमाः सकला इहार्थाः ।
केनाऽपि तेऽर्थपतिना परमेश्वरेण
विद्या ममैव ननु मह्यमिदं व्यनक्ति ॥६९॥

दिक्कालकल्पितगतेस्तव भूतभर्तुः
मायापतेः परमतेश्च महेश्वरस्य ।
आत्मा ममायमिति नाथ समर्पये स्वं
तस्माद्यतः प्रियतरं नहि तेऽवलोके ॥७०॥

जानामि नाथ तव कर्मणि साम्परायं
सामानि भेदमपि दानमनर्घ्यमेकम् ।
मायामपीश्वर पुनः खलु दण्डदात्रीं
तैर्नाम किं व्यवसितं मयि ते प्रसिद्ध्येत् ॥७१॥

बालो न वेत्ति खलु नाथ यदेश्वरं स्वं
मोहात्तु सेवितुमिहैव सतां सशिष्यः ।
ते वा कथं न भवितास्म्यहमम्बुजाक्ष
क्षीणोपमः परिणमत्कुलवृन्दवन्द्य ॥७२॥

ऐश्वर्य्यमीश्वरविभक्तममी गृणन्ति
प्राञ्चः श्रुतिस्मृतिविदोऽपि महद्धर्युपेताः ।
जात्यं तु तत्त्वयि मनः खलु निश्चिकाय
श्रुत्वाभ्युपेत्य निखिलानपि नाम भेदान् ॥७३॥

चेत्कर्मपाशनियता न वयं भजाम-
स्त्वामम्बुजाक्ष करुणाकर रम्यमूर्तिम् ।
मायैव सा ननु महेश्वर ते त्वदीयैः
क्षीरोदवीचिरुचिरैर्न तता कटाक्षैः ॥७४॥

छद्मेक्ष्यते मनसि येन न विश्वसीत
यो गौरवादपि गुणैर्विकलश्च योऽयम् ।
आत्मा ममायमिति नाम कथन्तयैव
श्रद्धा विधेयमधुरं प्रचरिष्यसेऽत्र ॥७५॥

कारुण्यमत्र परिदर्शय नाथ लोके
मूर्त्तेर्भिदास्तव यतः प्रथिता हि बह्व्यः ।
भक्तिं परां प्रतिविधाय जनोऽपि तासु
प्रावीण्यमर्जयतु शक्रसमानवीर्य्यः ॥७६॥

या त्वां विभूषयति चन्द्रकला न तस्या
दर्पो जनस्य दृशि सम्मदमादधाति ।
यस्तां त्वयैव मनुतेऽनुगृहीतरूपा-
मुत्कृष्य वन्द्यपदवीं परितो विनीताम् ॥१०१॥

विद्याः प्रभोस्तव कलाः प्रसृता नृलोके
सम्मानभाजनमतः खलु ता मतास्तु ।
चेदन्यथा स्वमिह भूषितमेव न स्या-
त्ताभिर्न संविदपि रूपमियाच्च तासाम् ॥१०२॥

विद्यां परां जगति कस्त्विह वेद वेद
यस्त्वामृते न सदसत्प्रथितं हि वस्तु ।
वेदोद्भवं खिलमिदं प्रभवश्च तस्य
त्वं कीर्त्यसे परमसुन्दर दर्शनेड्य ॥१०३॥

निर्वक्ष्यसे किमिति माममरेश कस्मा-
त्कालेन केन च कथं कमलाक्ष कुत्र ।
नात्मागतोऽवधृतिमेष ममात्र यस्मा-
दालम्बनं त्वमवनं च हि सर्वतोऽसि ॥१०४॥

सत्यानृते परिलसत्स्थितिके जगत्या-
मुत्पाद्यते ऋतमय त्वमुपासनार्हः ।
बुद्ध्याऽनया विषयसंहतया समन्तात्
को वा सदा नयविदेव मतो नृलोके ॥१०५॥

बुद्धिः परायदि मता मनसस्तया मे
तन्निग्रहोऽपि समये भविताऽऽत्मनैव ।
त्वत्तः स्मृतिर्मतिरपोह न मत्युदारं
यस्मात्परात्परतरः प्रभवः समेषाम् ॥१०६॥

हे चन्द्रशेखर महेश्वर रम्यमूर्त्ते
नास्माज्जनाज्जगति कश्चन हीयमानः ।
श्रीमान्नकोऽपि भवतश्च तथात्युदारः
श्रद्धापयैनममृताशय कान्तिभिस्तत् ॥१०७॥

एकं यमेव जगतामनुवर्तमाना
विश्वेऽपि नाथ कृतकृत्यतमत्वमैषुः ।
तस्मिँस्त्वयि प्रणिदधेऽहमनन्यरूपं
स्वं द्वैतवारणकृते परमार्थतस्तु ॥१०८॥

केनेशितस्तव पुरो विहरामि मायां
दैन्यं प्रकाश्य यदि तुच्छपदं लभे न ।
दासस्य मूढतममाचरतोऽपि नाथ
प्रेम्णानुगृह्यभविनां प्रभवो दिशन्ति ॥१०९॥

स्वार्थान्धबुद्धिरपि निश्चितनिर्ममत्वो
लज्जे तवस्तवमयं बहुधा न कुर्वन् ।
दासः क्वलोभरहितः प्रभुसेवने स्या-
ल्लुब्धश्च याचत इति प्रथितं तु वस्तु ॥११०॥

कामार्ज्जना पशुपते मम दोषराशे-
र्नाहङ्कृतिः कथमिव श्रयतां तथा वा ।
निर्लेपतामयमये लभतां कथञ्च
श्रेयो भजेत भगवँस्तव पुण्यदृष्टेः ॥१११॥

इच्छां विहन्य विविधां भगवन्नमुष्य
चित्तं तनुष्व तव पादतलानुरक्तम् ।
जाग्रत्स्वपन्निति कदापि न विस्मरेयं
त्वां भूतभावन भवे निमिषञ्छ्वसन्वा ॥११२॥

माभूत्कदापि खलु जन्मनि विस्मृतिस्ते
सेवां त्यजेन्न हृदयं न वचो न कायः ।
स्फूर्त्तिर्मतौ मम तवास्तु सुचारुमूर्त्ते-
र्या माधुरीं त्यजति नैव कथञ्चनापि ।।८६।।

बुद्धिं लषत्यनवरामसहाय एष
तस्यास्त्वमेव च भव प्रभवो मतोऽसि ।
मान्द्याहतस्य खिल दोषहरो हरस्त्वं
कल्याणदः शिव तवैव कृपाकटाक्षः ।।९०।।

यः पौरुषैर्विरहितो विगुणोऽसहायो
ऽयोग्यः समर्पयति सर्वमपि स्वकार्य्यम् ।
त्वय्येव नाथ परितुष्यसि तस्य तत्त-
न्नित्यं च निर्वहसि योगसमाश्रितस्य ।।९१।।

धार्य्या नु का हि सुमतिः कुमतिस्त्वपोह्या
नाथात्र नास्य हृदयं लभते विवेकम् ।
एका त्वदीयकरुणालहरी गिरीश
श्रान्तस्य सिञ्चतु मनः परिलोलुपस्य ।।९२।।

यस्मिन्न वाङ्मनसयोः प्रसरो महेश
प्रीणाति यः परिभवन्नपि ते कृपालुः ।
तस्यैन्दवीं शुचिकलां दधतः शिवासा
संवित्सदा मम भवे तव चारुमूर्त्तेः ।।९३।।

प्रेमैवमस्य विषयेषु यदा न जाने
काङ्क्षाङ्गति तु समुपैष्यति दुःखभोग्याम् ।
एकास्मृतिस्तव पुनात्यखिलान्हि जीवान्
जीवातुरस्य जगतोऽपरतोपमस्य ।।९४।।

श्रान्तं मनस्तु विषयेष्ववबद्धमस्य
श्रान्तेर्भयान्न नु विराममुपैत् यमुष्मात् ।
त्वत्पादपङ्कजरसान्मधुराद्विमुग्धं
मायापते तव कृपामनवाप्य सम्यक् ॥९५॥

द्वारिप्रवेशमनवाप्य सहस्रसंख्या-
स्तिष्ठन्ति ते मरुगणा अपि शक्रमुख्याः ।
गर्वं च संवहति मादृगपीह तत्र
स्वेर्ष्यावशेन नयने अपि नो पिधत्ते ॥९६॥

किं कौतुकं किमिति कार्मणसंप्रसार-
स्त्वद्दर्शने किमु हता विषयाः पराञ्चः ।
माया यतः शिशुमिवामुमपि प्रपन्नं
यत्नात्स्वयं परिहरन्त्यपि नो जहाति ॥९७॥

मायाऽऽवृतिस्तव मता न परं मयातु
त्वामावरीतुमिह शक्तिरनन्यनिष्ठा ।
तस्मात्त्वमेवशरणं प्रमुखे मुमुक्षो-
र्लभ्यः स्वयं सकलदोषगणं विहत्य ॥९८॥

आत्मा त्वमेव भगवँस्तव किन्नतस्या
त्संबिद्ध्युमा त्वदनुगस्य पराऽस्यशक्तिः ।
सङ्कल्प्यते यदि जयः खलु तेन तस्या
स्त्रीपुंसयोस्तु कलहो वपुषस्तवायम् ॥९९॥

यः शैशवं प्रतनुते जगतः पिता यो
यश्चाल्पशक्तिरिह यः खलु सर्वशक्तिः ।
संबन्ध एव विमतो न तयोस्त्वतुल्यः
स्वस्वोपचाररहितस्य च तस्य तस्य ॥१००॥

जन्मान्तरेषु न च जन्मनि मानसे न
वाचा न वा तनुभवेन तु कर्मणापि ।
त्वत्तः पृथक्किल भवेयमहं भवानी-
नाथ प्रजासु समबुद्धिरथाचरेयम् ।।११३।।

किं तद्दिनं खलु भविष्यति दृष्टिमार्गे
यस्य क्षणेष्वहमहं न ममेति बुद्धिः ।
सर्वान्विलोप्य विषयान् परितः प्रजातान्
ऐक्यं तनिष्यति तवास्य च निर्विशेषम् ।।११४।।

कश्चिन्न दुःखभवनं भवतान्नृलोके
नायं जनोऽस्तु परितापयिता च कस्य ।
त्वत्कीर्तिराशु जगतां त्रितयं पुनाना
चन्द्रस्य लाञ्छनमपि प्रतिलिप्य जीयात् ।।११५।।

चेदिन्द्रियाणि न बहिर्मुखतां द्विषन्ति
स्वार्था न मां विजहति प्रभुता त्वदीया ।
नो वा यदि प्रभविताऽहमनन्यबुद्धि-
स्त्वामात्मनैव गिलितं न पुनर्निरीक्षे ।।११६।।

वुद्ध्याऽवरः स्वपरनिर्णयनेऽसमर्थो
लोकोपचाररहितोऽकुशलोऽतिदुःखी ।
उद्देश्यमुख्यमवधाय हृदैव नित्यं
सर्वं समर्प्य भवते सुखमेधतेऽयम् ।।११७।।

अस्मिञ्जने तव कृपा यदि चेन्न नाथ
श्रेयः कथाऽपि न पथि श्रुतियुग्मकस्य ।
प्राणाः श्वसन्ति भवतेऽस्य यथादिदुःखी
त्वद्विस्मृतिक्षणलवेऽपि भवेदयश्च ।।११८।।

शम्भो तवेन्दुकिरणैः परिशीतलेन
किन्नात्मनास्य भवितव्यमनात्मनोऽपि ।
कीर्त्या तवैव करकङ्कणकल्पमस्य
श्रेयोऽन्यथा नहि विहास्यति कर्मबन्धान् ॥११९॥

आत्मन्वशे तव मनः खलु चञ्चलत्वा-
त्त्वां मोहयत्सजति यत्प्रकृतेर्गुणेषु ।
तथ्यं तदित्यनुमतं परमत्रपृच्छा
कस्मात्कथन्न्विपरो मनसः क आत्मा ॥१२०॥

आत्मा त्वमेव मन आदि समस्तमेतत्
तुभ्यं नतिर्विहतये खलु कर्मणां स्यात् ।
मादृक्कथन्न्विव विशेत्तव पादमूलं
द्वैतं जहाति नहि यः परितो विमुग्धः ॥१२१॥

आनन्दसिन्धुसुहितः परितुष्ट एष
प्राप्यैव शान्तिमहितं स्वरसप्रवाहम् ।
त्वत्तस्तु स प्रभवति प्रभवादनादे-
रव्यक्तचारुनिलयात्परमात्मरूपात् ॥१२२॥

योऽहं हिताहितविवेचनमेव कर्त्तुं
शक्नोमि नाथ न धियाऽपरिपक्वयाऽयम् ।
सत्वां वृणे शरणमत्र महेशयोगा-
दाराधये परमितीव सुखं विहर्त्तुम् ॥१२३॥

सम्मोहयन्त्यवरमीशपरे समन्तात्
सोप्याश्रयत्यथ परात्परमं महान्तम् ।
दृष्टास्ततः स्वयममुष्य तथोपकारा
ह्यज्ञानितापि शरणं परमं परश्च ॥१२४॥

ज्ञानं तदैव हृदयेऽलभत प्रसारं
त्वांमेष मातरमिवानुससार लोके ।
शक्तं यदा प्रभृति नाथ पुराणमीशं
यस्मिन्ननुष्य नहि कश्चन मुच्यतेऽपि ॥१२५॥

शक्तिस्तव प्रतिननाश किमीश नित्या
यन्मां चिकीर्षसि वशे विधिवत्परेषाम् ।
प्रद्वेष्मि नाहमितरा इह ते विभूती-
रिच्छामि तु स्वमबलं भवतो विधेयम् ॥१२६॥

दोषैर्वृतोऽपि हृदये विहतः कुदैवात्
पुंस्त्वेऽवरः परतरश्च मदात्मनोऽपि ।
इत्थं भिदापरधिया विकलोस्य कस्मा-
त्त्वं मन्मुखं नहि निरीक्षितुमीहसे यत् ॥१२७॥

यस्याहमीश्वरमुखे विनिधाय दृष्टिं
दुःखाब्धिपारगमनाय यते स्वशक्त्या ।
नालोकतां यदि समाममरेश लोके
हीनो न कोऽपि मदिति प्रतिनिश्चनोमि ॥१२८॥

श्रद्धाविहीनपुरुषः परमेश्वरस्य
पादाब्जदर्शनमुपैति न वेद्मि नीतिम् ।
किन्त्वस्यनाम हृदयस्य न नाथ शान्तिः
प्राप्तं ह्यनेन परमं त्वयि दृष्टिसाम्यम् ॥१२९॥

तृप्यन्ति नाथ वदनेन्दुसुधां निपीय
स्वर्गेऽपि नो हरिविरिञ्चिमुखा हि ते याम् ।
सा हानिमेष्यति कथं हृदयाद्विपन्ना-
न्नेत्याश्वसित्यथ मनोरथचुम्बिनी किम् ॥१३०॥

येषां प्रभाविसर एष गलत्प्रवाहं
गाङ्गं पयोऽनुकुरुते सुरराज्यपूज्यम् ।
तेषां नवेन्दुशकलाकृतिसुन्दराणां
स प्लावयेन्मम मनस्तव वै नखानाम् ।।१३१।।

यस्योत्तमाऽखिलविभोः शशिनोऽभिकम्या
लोकं पुनाति मदयत्यपि चारुकीर्तिः ।
यस्मै नतः परिभवं न कदाचिदेति
स्तुत्या न या मम भवेत्सशिवः शिवाय ।।१३२।।

एकेऽपि मोहयितुमेनमिवेहमानाः
श्रद्धां न मेऽपि विभजन्ति न दैवयोगात् ।
तेभ्योऽपराभवमयं महितुः कथ स्या-
दित्येष शेषकरकङ्कण मेऽनुयोगः ।।१३३।।

सर्वान्विकाश्य विभवांस्तपसाऽत्युदारा-
नेके रमन्ति पुरुषोत्तम पूरुषाग्र्याः ।
त्वत्कीर्तिदिव्यसरिति स्वगुणानुसारं
ये स्नान्ति तीर्थवर रम्यतमोपमायाम् ।।१३४।।

प्राणास्तवास्य करुणार्णव ये गता वै
शुद्धं समर्पणममीषु न मेऽधिकारः ।
सक्तिर्ममात इव नैषु कथञ्चनापि
प्रेष्यस्य यत्पुनररहङ्कृतिशून्यतायाम् ।।१३५।।

नायं तपश्चरितवान्सुकृतं न चक्रे
श्रद्धामयोऽस्य पुरुषस्य परं स आत्मा ।
भूतेशचन्द्ररुचिसञ्चर एष भूया-
त्वद्भावनाविरहितो न मनोगवाक्षः ।।१३६।।

लोकान्प्रकाश्य परिमोष्य जनस्य दृष्टी-
राज्ञापय प्रणतपालभवाब्धिशोषिन् ।
अज्ञानदग्धविभवस्य मनः प्रसत्त्यै
विज्ञानभास्कर महेश्वर धर्ममेयम् ॥१३७॥

ज्ञानामृतालय महेश्वर लोकबन्धो
बिन्द्वेकदेशमपि दास्यसि चेत्ततोऽस्मै ।
भूत्वाऽजरामरवपुस्तव पादसेवी
चिन्तां विहास्यति जनः पुरुषार्थमानी ॥१३८॥

अज्ञानिता न शरणं कथमप्यवश्यं
मायैव मां प्रति पुनः प्रसृता समन्तात् ।
एकस्य सा तव हि नाथ मता मयासौ
श्रेयस्ततो मम सदा भवतैव चिन्त्यम् ॥१३९॥

नेक्षेऽत्र किञ्चन जगत्यखिलेऽपि मित्रं
यन्मां निवारयति पापजुषं निगृह्य ।
त्वत्तो गुरुर्न मम कोऽप्यविनेयबुद्धे-
रात्मा त्वमेव शरणं सुखदुःखयोर्मे ॥१४०॥

लाभोऽस्ति कस्तव विशालमतेऽस्ति मत्तो
यस्मै भवेदपि भवानुरगेन्द्रभूषा ।
प्रायेण भिन्नमतयस्त्वयि बोधसाम्यं
सर्वेऽनुरञ्जनवशान्मनुजाः प्रपन्नाः ॥१४१॥

रोषोऽपि येन खलु देववरस्य शम्भो
तुल्योऽखिलार्थमय कामदुधा प्रसत्त्या ।
तेनैव बिभ्यति जना न बताशुतोष
सञ्चिन्त्यतामपि शिवां तव चारुमूर्तिम् ॥१४२॥

बालोऽधृतिश्च विषयी हतबुद्धिरेक-
स्त्वन्यः परावरविभुर्बत बोधमूर्तिः ।
भूयः कथं भवतु सङ्गतिरेतयोस्तु
प्राज्ञाज्ञयोर्निरुपधिव्यतिभेदहानौ ॥१४३॥

ज्ञानं बलं न मम किञ्चिदिहास्ति रम्यं
ज्ञानं परं बलमिति श्रुतमप्यनेन ।
कस्मै किमर्थमहमस्मि न चान्ववैमि
त्वां प्राप्य निर्वृततरोऽस्मि तु पुण्ययोगात् ॥१४४॥

कालेषु दुःखबहुलेष्वपि चेदमुं ते
दिव्या नहि स्म जुषते स्मृतिराढचवर्णा ।
सांसारिकेषु विषयेषु निबद्धबुद्धिः
किन्त्वां भजिष्यति तदायमनन्तकीर्तिम् ॥१४५॥

अन्यार्थमस्मि न विभोऽस्मि तु यत्त्वदर्थं
त्वत्प्राप्तिरेव हि मता पुरुषार्थभूतिः ।
भूतेश तत्प्रथमदेव दिशस्वबोधं
दृष्टं न केन चरताऽपि तवादिधाम ॥१४६॥

विज्ञापयामि बत कान्यपि कानि लोके
कर्माणि नाथ भवते स्वकृतानि यानि ।
सर्वत्र येषु भवतो भव दृष्टिलोपो
दृष्टिर्ममैव विरमेन्नयतोऽनुपाया ॥१४७॥

त्वद्दृष्टिपातसमकालममुष्य सर्वे
दोषाः प्रयान्ति विलयं नरकस्य देव ।
दृष्टिः परं नियततां त्वयि तेन सा तु
क्वापीह केन बत निर्वृतिमेष्यतेऽयम् ॥१४८॥

यद्वा तवेश करुणाऽपि विचित्ररूपा
लक्ष्या न के नहि जडेन बुधेन वा यत् ।
आख्याति किन्तु भगवन्नभितोऽप्रकम्प्या
साधोरिमां न न सतीव मनःप्रसत्तिः ।।१४९।।

मूर्तिस्तवास्य हृदि चेदवकाशमीयान्
न स्यादयं शिव न ते वशितामवाप्तः ।
चिन्त्योऽसि चिन्त्यतमता त्वयि केन चिन्ता
न स्यान्ममापि सगुणागुणभक्तिलब्ध्यै ।।१५०।।

पूर्णोऽखिलोपकरणैः श्रवणादिरूपै-
र्यच्चापरोऽहमिति नाथ ममापि लज्जा ।
सन्त्यज्य तानि बत किन्तु तव प्रसाद-
मेकं श्रितोऽस्मि यत एव समस्तमेतत् ।।१५१।।

काव्यं न मे सुरुचिरं न च भावशुद्धिः
काचित्ततोऽपि परमा न तवेश पूजा ।
योगो न साङ्ख्यमथवेह तपो व्रतादि
ज्ञानं न निर्म्मलतमं बत किं करोमि ।।१५२।।

आत्मानमीश्वर समर्प्य वशे प्रभोस्ते
यावद्यतेऽथ विषयान्तरतो मनः स्वम् ।
व्यावर्त्तितुं कुरु विभो विनयोपदेशं
चोत्क्रष्टुमिच्छसि मतो यदि मां तु तावत् ।।१५३।।

आजन्म संसृतमतिस्तव पादमूल-
प्रेप्सामहं हि बहुमानितवान्महेश ।
लब्धा न सा यदि मया मम कोऽत्र दोषः
प्रारब्धकर्मविगुणस्य विपौरुषस्य ।।१५४।।

ज्ञानं विरागफलकं स च तत्फलं तु
प्राज्ञोऽत्र नाभिमनुते न तवानुकम्पाम् ।
नो चेत्परस्परमुपाश्रिततद्द्वयं तत्
कार्यक्षमं न भवतादुडुनाथमौले ॥१५५॥

आशा ममेश्वर तवाङ्घ्रिरसे निमग्नं
चित्तं स्मरिष्यति न किञ्चिदपीह लोके ।
तामाशु पूरय भवे भव भूरिभाग्या-
स्तिष्ठन्ति नैव पदवीमधिगम्य मुक्तेः ॥१५६॥

लोभश्चकास्तु हृदये नितरां विमुक्तेः
स्नेहस्तवाङ्घ्रिकमलद्वयमेत्य रुच्यम् ।
कामस्त्वदीयगुणवर्णनरक्षणादौ
मोहोऽपि चेत्तव कृते प्रसरत्वनर्घ्यः ॥१५७॥

कल्याणरूपगुणवर्णनमेव यस्य
प्रावृट्तडित्वदवमुक्तजलीयबिन्दून् ।
संस्मारयत्यथ च मोहयतीव लोकं
विद्वांसमप्यनुमतो निखिलैः प्रभुः सः ॥१५८॥

यः शक्तिमानपि विराजति शक्तिमध्ये
तेजोमयस्य बत तेजसि यस्य सत्ता ।
सत्त्वात्मकस्य सदसद्विमतैवमाया
तस्मै नमोऽस्तु निगमागमसङ्गमाय ॥१५९॥

न साङ्ख्ययोगाधिगमः कृतो मया
न भक्तिमार्गे प्रवणाऽपि मे मतिः ।
परैमि च श्वो भवदेकनिष्ठया
मनः पुनः स्यान्न कथं निराकुलम् ॥१६०॥

प्रभोः समीपे नियतात्मना यथा
स्थितिर्विधेयाऽऽदृतसाधुवर्त्मना ।
तथा न पार्य्या मयका महेश्वर
प्रभानपूष्णः खलु भाति दीपके ॥१६२॥

उदारतां ते परिलोच्य साम्प्रतं
जनो विभज्येत कथं न्वहं पुनः ।
य एकजन्मार्जितसाधुकर्मणा-
ऽनवाप्तुमर्हाँ तव संविदं वदे ॥१६३॥

एकैव वीक्षावदनोडुपस्य
प्रापय्य साम्राज्यमपि स्वराज्यम् ।
दोषान्समस्तान्व्यपनीय चित्तात्
कैवल्यहेतुर्भवतीति सम्यक् ॥१६४॥

कैवल्यमात्रोचितसत्त्वशुक्लां
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति तु ये स्वमूर्त्तिम् ।
उमापते ते न कदाचनापि
प्रयान्त्यसौख्यं खलु धर्मवृद्धाः ॥१६५॥

द्विषन्ति नाथं स्वरसं विमुक्तं
त्वामिन्दुचूडप्रमदेन्दुकामाः ।
करोषि वृद्धिं शरणागतानां
परं पराजित्य पुनस्त्वमेषाम् ॥१६६॥

त्वामेकमीशान विजेतुमेते
न शक्नुवन्तीति जगत्प्रथेयम् ।
निर्वापितः साधु विलुप्तविधै-
योगीश्वराणामपि दर्प्प एभिः ॥१६७॥

क्षोभः कदाचिन्न तवैव भावो
प्रभाविणं मामनपेक्ष्यमीक्ष्य ।
नित्यं निरीहस्य जगत्पतेर्य-
न्निसर्गकारुण्यमयी प्रवृत्तिः ॥१६८॥

कृपा न चेन्नाथ तवात्युदारा
न मां विलोकेत हि कोऽपि लोके ।
परन्तु ये ते भवभक्तियुक्ता
नेष्टेऽत्र कश्चित्खलु वीक्षितुं तान् ॥१६९॥

त्वदीयगुणवर्जितं मम मनोन कुत्रापि. चेद्
रमेत पुरुषोत्तम प्रहर नैतदग्र्यं द्विषाम् ।
तवैव चरणोन्नतिः स्तुतिशतार्हमूर्तिः स्पृशत्
पुनातु परमेतदीश्वर मदीयकल्याणदा ॥१७०॥

कुमार इति मामकं मतुमुमेश नोपेक्ष्यतां
प्रमाणमसि केवल त्वमिह जीवलोके नृणाम् ।
त्वदीयगुणगर्ज्जनाविहितपापसन्तर्जना
जनाधिकममुं क्वाचित्परिजनान्वितं दर्शयेत् ॥१७१॥

इयं तव गुणस्तुतिर्जनमनः सदाह्लादये
त्प्रभावपिहितोन्नते न खलु ता क्वचिद्वापयेः ।
वयं न तव निर्गुणस्य खलु गौरवं चक्षुषा
कदाचिदपिवोक्षितुं भुवननाथ यच्छक्नुमः ॥१७२॥

श्रीसीताकटाक्षशतकम्

रक्षन्तु वः श्रीजनकात्मजायाः
सुधोज्ज्वलानैल्यमुषः कटाक्षाः ।
श्रीरामचन्द्रीयमुखारविन्दं
प्रस्फूर्तिमन्तोऽपि न ये प्रयान्ति ॥१॥

आलिङ्गयद्यैः श्रीरघुनन्दनस्य
श्रोरुत्पलालीं सहसा पिनद्धा ।
विसिष्मिये केऽप्यद्भुतभाग्यलाभात्
ते शंयवो भूतनुजाकटाक्षाः ॥२॥

नीलोत्पलालीममृतस्यपूरं
रसायनं ये प्रमदं वहन्ति ।
श्रीरामचन्द्राय रमानिवासा-
स्ते भूरमायाः कुटिलाः कटाक्षाः ॥३॥

हैयङ्गवीनोपम कान्ति कम्रैः
श्रियां निवासैरतिदीर्घदीर्घैः ।
श्रीरामचन्द्रे रतिवर्षुलैस्तैः
सीताकटाक्षै रतिमाञ्जनोऽस्तु ॥४॥

लीलागतं चार्वथ शिक्षयन्तः
सपक्षशोभा ऋजुतागुणेन ।
भ्रूकार्मुके न्यच्च्य मुखे विसृष्टाः
पत्युः श्रिये भूतनयाकटाक्षाः ॥५॥

त्रिभागजातैः सकलोपिलोको
यैर्लोक्यते विश्वभृतो प्रवणैः ।
प्राणाः परेते खलु जिष्णुविष्णोः
विदेहजायाः सुखदाः कटाक्षाः ॥६॥

यान्मैथिली तीक्ष्णतरान्व्यमुङ्क्त
रामे रमेवाखिल लोक नाथे।
पिनाकभङ्गेऽतिविकस्वरास्ते
सतां श्रियै सन्तु शुभाः कटाक्षाः ॥७॥

विदेहजासाचिविलोकितानि
तानि श्रिये सन्तु कवीश्वराणाम्।
येषां पुरोधावति दूतिकेव
नीलोत्पलाली पतिसंमुखीना ॥८॥

आलिङ्गिता यैरति शोभनत्वं
दधार रामस्य शरीरलक्ष्मीः।
विदेहजायाः प्रभवन्तु ते वो
भृङ्गावलिश्रेणिरुचः कटाक्षाः ॥९॥

श्रीरामचन्द्रेणभुजाग्रदण्डं
निरीक्ष्य चापे निहितं शिवस्य।
अस्मिन्नियान्भार इतीवरक्ताः
श्रियै विदेहेश्वरजा कटाक्षाः ॥१०॥

पूर्वं वृते यैर्मनसाऽपि लोला
वव्रे वरं नीलसरोरुहाक्षी।
चन्द्राननालङ्करणाः श्रियै ते
रामस्य वैदेहि भवाः कटाक्षाः ॥११॥

मुखाब्जमङ्गानि वचो हृदन्तं
रामस्य सार्द्रैर्मसृणीकृतं यैः।
तन्तु श्रियै वोरतिदूतितुल्या
स्ता मुग्ध वैदेहि कटाक्षभासः ॥१२॥

सखीजन प्रेरणयाऽपि रामं
गच्छन्ति नो ये स्वय माप्नुवन्ति ।
कुलाङ्गनास्वैरगताभिरामा-
स्ते सच्छ्रियै भूतनुजाकटाक्षाः ॥१३॥

राधाऽपियेषां न कदापि साम्यं
लभेत गोपाङ्गभवा विमुग्धा ।
मुग्धा अतिस्निग्धतराच्छभास-
स्तीक्ष्णाः श्रियैते मिथिलाकटाक्षाः ॥१४॥

श्रीरामचन्द्रस्य मुखारविन्दा-
दन्यत्त्रिलोक्यामकृतार्थयन्तः ।
कृतार्थयन्ति त्रिजगद्भुवो ये
ते सच्छ्रियै गोतनयाकटाक्षाः ॥१५॥

श्रीरामभद्रीय मुखारविन्दे
भृङ्गावलीं ये तिरयन्ति लोलाम् ।
मन्दारमालावलयश्रियन्ते
श्रियै विदेहाङ्गभुवः कटाक्षाः ॥१६॥

कामोऽपि नूनं न बभार चापं
रामाय येषु भुवि संहितेषु ।
कृतार्थतामाप्य कृतार्थयन्तु
ते वो विदेहेश्वरजाकटाक्षाः ॥१७॥

रामारविन्दं परितोनिपत्य
गाढं रसाद्ये रसयन्ति केऽपि ।
रामामणेस्ते मधुपानुकाराः
श्रियै सतां सन्तु चलाः कटाक्षाः ॥१८॥

चाञ्चल्यलक्ष्म्याऽपिमिलिन्दपङ्क्ति
जयन्ति ये कृष्णगुणानुरक्ताः ।
राधाजिगीषामिव धारयन्त-
स्ते वः श्रियै भूमिसुताकटाक्षाः ॥१९॥

क्षेपिष्ठमेव श्रुतिलङ्घिनो ये
रामं श्रुतीनां परमर्हयन्ति ।
ऋचां परस्तादपि शुद्धसत्त्वाः
ते वः श्रियै केचन मैथिलेयाः ॥२०॥

कामस्य कामं परिपूरयन्तो
रामं पुरस्तादवनामयन्तः ।
रतेरपि प्रीतिकराः कटाक्षाः
श्रियाययोध्येश्वरवल्लभायाः ॥२१॥

प्रभोरयोध्याधिपते प्रियायान्
तस्मिन्व्यमुञ्चद्रभसातिवेगात् ।
रामस्य रोमाञ्चमुदञ्चयन्त-
स्ते वः श्रियैभूमिभवाकटाक्षाः ॥२२॥

उपान्तरक्तैरनुरञ्जद्भि-
र्लोकोत्तरं स्वं रमणं विकोस्मैः ।
यैरञ्जितानित्रिजगन्ति ते वः
श्रियै विदेहेन्द्रभुवः कटाक्षाः ॥२१॥

वर्षन्ति कामानखिलेऽपि लोके
ये रामवक्त्राब्जनिवेशिनोऽपि ।
शालीनता लब्ध समानुरागा-
स्ते वः श्रियै श्रीमिथिलाकटाक्षाः ॥२४॥

रामाभिरामाननचन्द्र लग्नै-
रुच्छ्वास्यते यैर्जनता चकोरा ।
सुधासहोत्थाविनर्यान्त ये वा
शिशून्श्रियै ते मिथिलाकटाक्षाः ॥२५॥

सुधाभिगौरै रपियैर्विषज्य
रामाननं दीप्यत एव रागात् ।
विशालतृष्णस्य जनस्य रागा-
रक्षाः श्रियै श्रीमिथिलाकटाक्षाः ॥२६॥

त्यक्तेऽपि राज्ये न यदीयलोभो
रामं व्यमुञ्चत्प्रणयातिरेकात् ।
ते तस्य पादौ परिचारयन्तः
सीताकटाक्षाः शुभदाः श्रियै वः । २७॥

न्यरंस्त रामः सहि केषु राजा
न राजलक्ष्म्याच्छलितो नृपर्षिः ।
इतीव येषूत्सुकिताऽनुसूया
श्रियै सतां ते मिथिलाकटाक्षाः ॥२८॥

रामेण मारीचमृगोऽनुसस्रे
येषां प्रसादार्थमिवात्मभासाम् ।
मृगे कटाक्षानुभवेप्यसारा
स्तेवः कटाक्षाः सुखदाः श्रियः स्युः ॥२९॥

स्वर्गातिथिं बालिनमिन्द्र सूनुं
सुग्रीव दासीं कपिराज्यलक्ष्मीम् ।
चकार रामोऽपि कृते स येषां
तें वः श्रियै सन्त्वनघाः कटाक्षाः ॥३०॥

येषामृजूनामुप लभ्य फुल्लां
श्रियं स्वरामश्रवणाधिकार्हाम् ।
सुधाम्बुधावा शिखमप्यमज्ज-
द्वायोः सुतस्ते शुभदा दृगन्ताः ॥३१॥

उत्साहितो यैरपि यत्प्रियार्थं
भङ्क्त्वा वनं रावणजं निपात्य ।
विलोक्य रक्षः प्रददाहलङ्कां
कपिः श्रियै ते मिथिलादृगन्ताः ॥३२॥

वन्द्यां नियुक्तास्वपि राक्षसीषु
रक्षः पतेः श्रीपरिमोषिकासु ।
विवेद सौभाग्यगुणं तु येषा-
मेकैव ते वः शुभदाः कटाक्षाः ॥३३॥

कृतप्रतिज्ञं विजये धृतार्थं
जिष्णुं सुधीरं प्रभविष्णु त्रिष्णुम् ।
अमूमुहन्ये परिसंस्मृता अ-
प्यन्तः श्रियैते मिथिलादृगन्ताः ॥३४॥

मायाकृतायामपि नाम देव्यां
दोष्ट्याद्द्विरग्रे विनिपातितायाम् ।
सेहे न रामोऽपि सयत्प्रहाणिं
तेवः श्रियै सन्तु परे कटाक्षाः ॥३५॥

मन्दोदरीयेभ्यउदारबुद्धि-
र्विभाय पत्यौ युयुजेऽथ साम ।
दानं दमं चानु बिभीषिकादि
ते वः श्रियै सन्त्वमलादृगन्ताः ॥३६॥

शशामयेभ्यः स्पृहयन्सरक्षो-
    वंशप्रदीपः परवारणोऽपि ।
बद्धाभिलाषो वृषलो व वेदे
    ते वः श्रियै सन्तु सतीकटाक्षाः ॥३७॥

येषां प्रचारार्थमिवाध्वगानां
    विभीषणः स्वैः सचिवैः सनेत्रैः ।
उत्सारयामास हनूमदादीन्
    ते वः श्रियै सन्तु सतीदृगन्ताः ॥३८॥

येषां विशुद्धिं रघुवंशकेतो-
    रनुज्ञया पूर्वतरं कृशानोः ।
सैन्यं कपीन्द्रस्य विनिश्चिकाय
    ते स्वस्तिदाः सन्त्वपरे दृगन्ताः ॥३९॥

सुखाम्बुधिं ये त्वरयन्तिभक्तान्
    रामं प्रवेल्लन्ति सुधासमुद्रे ।
मन्दारमाला कलितावतंसा-
    स्ते वः श्रियै सन्त्वमलाः कटाक्षाः ॥४०॥

रूक्षाणि रामस्य वचांसि सोढुं
    न शेकिरे यैः प्रियसन्निविष्टैः ।
वह्निर्लुलोके जलजोपमान
    ते वः श्रियै भूकमलाकटाक्षाः ॥४१॥

देवैः स्वयंभूप्रमुखैर्विशुद्धिः-
    र्न्यवेदि येषामनलात्सुपूर्वम् ।
रामस्य ये वा विजयश्रियोऽन्ये
    ते श्रीकराः सन्तु सतीकटाक्षाः ॥४२॥

२८

सीते मृषस्वेति विनीयवाणीं
विज्ञापिताये प्रभुणाऽपराधे ।
निपत्य पादौ मिलिता दृगन्तै-
स्तस्य श्रियै ते मिथिलादृगन्ताः ॥४३॥

स्पर्धां जहत्येव न ये दृगन्तै-
रामस्यधोरा अपि भीरुरूपाः ।
तस्य श्रियं कामपि वर्द्धयन्त-
स्ते वः श्रियै पद्मदृशो दृगन्ताः ॥४४॥

रक्षःप्रहीणां विधवामनाथां
लङ्कां दिदृक्षन्ति न ये विधाय ।
विचिन्तयन्ति स्म विभीषणार्चां
ते वः श्रियै सन्तु सतीदृगन्ताः ॥४५॥

निःश्रीकतायां परितस्ततायां
रक्षोनगर्य्यां कुलपद्ममेकम् ।
जहास येषां सुभगत्वदोप्त्या
ते वः श्रियै श्रीमिथिलाकटाक्षाः ॥४६॥

रक्षोगृहस्थैरपिर्यैहि दिव्यं
तत्कालदृष्टं धनदस्य यानम् ।
बभार रोमाञ्चमिवांशुमत्त्वा-
त्ते वः श्रियै सन्त्वनघा दृगन्ताः ॥४७॥

आनन्दजाश्रुप्लुतलोचनानां
मध्ये कपीनां प्रभुणामिलन्तः ।
ये पुष्पकस्थाः सुरपुष्पवृष्टा-
स्तेः वः श्रियै सन्तु सतीकटाक्षाः ॥४८॥

रामे मदं सञ्जनयन्त एव
भक्तस्य लोके कनकन्ति ये वा ।
शाणायमाने रघुवीरदेहे
सुखायते वः स्वमिवोत्कषन्तः ॥४९॥

साकेतभूमिं प्रतियास्यताख-
मुड्डीयमानेन नभोगमेन ।
संदर्शितायेऽङ्घिवनाद्रिलेखां
ते वः श्रियै केचन सद्दृगन्ताः ॥५०॥

शान्तां ततामाकृतिमम्बुराशेः
फेनायितां तारकितामिवद्याम् ।
विलोक्य फुल्लास्तुलयन्तियेते
सतां श्रियै भूतनुजाकटाक्षाः ॥५१॥

आलोच्य रामाननमेव चन्द्रं
निश्चित्यया‍ञ्छीतरुचेर्मयूखान् ।
पीयूषपूरस्त्रपितो यथाब्धि-
र्जहर्ष ते वः शुभदा दृगन्ताः ॥५२॥

जानन्तिदूरादिव माषराशिं
ये वारिराशौ प्रथिताभिमानाः ।
पृच्छन्ति मौग्ध्यादनुराघवेन्द्रं
ते वः श्रियै चारुरुचः कटाक्षाः ॥५३॥

इहैव मेघस्त्विह राक्षसेन्द्रो
हतोऽत्रपारे जलमम्बुराशेः ।
विभीषणो मां समगंस्त रामो
न्यवित्तयांस्ते शुभदा दृगंशाः ॥५४॥

त्रिकूटमैनाकमहेन्द्रमुख्यान्
उत्स्निह्य पश्यन्ति तु ऋष्यमूकम्।
सुकण्ठपत्नीः सुखदादिदृक्ष-
न्त्युकाः श्रियै ते रुचिराः कटाक्षाः ॥५५॥

प्राणेशदत्तावसराः प्रिया ये
सुकण्ठपत्नीरधिरोप्य यानम्।
नभः समुत्पेतुरुदारवेषा-
स्ते शंयवः श्रीमिथिलाकटाक्षाः ॥५६॥

बाहू सुदीर्घौ रघुनन्दनस्य
यैश्शक्तिरम्यैश्चिनुतः स्म कीर्तिम्।
नृत्यन्ति ये तन्मुखचन्द्रबिम्बं
वीक्ष्येव ते श्रीशुभदा दृगन्ताः ॥५७॥

मुखेन्दुबिम्बादधरोष्ठविम्बात्
स्तनातिभारादपि मध्यभङ्गात्।
रामस्य ये सम्मदमावहन्ति
ते वः श्रियै राजसुताकटाक्षाः ॥५८॥

स्मरन्ति ये पञ्चवटीं सुपुण्यां
पुना रिरंसन्ति तपोवनेषु।
गोदावरीं निर्वचनां भजन्ते
सतां स्म लक्ष्म्यै ननु ते दृगन्ताः ॥५९॥

विलोक्य गङ्गां प्रचलत्तरङ्गां
स्नात्वेव ये शुद्धतमा बभूवुः।
चेलुश्च रामाननमुख्यचन्द्रं
सतां श्रियै ते कमलादृगन्ताः ॥६०॥

यानश्रमार्त्तानिवयान्सुशीतान्
स्पृष्ट्वा तरङ्गानानिलः सरय्वाः ।
प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयीं
निदर्शयँस्ते सुखदा दृगन्ताः ॥६१॥

मृदङ्गसन्नादिगृहोदरेषु
सौधेषु नार्याननचन्द्रिकेषु ।
पतन्ति ये वा परितोऽप्ययोध्यां
सतां श्रियै ते रुचिराः कटाक्षाः ॥६२॥

वधूमुखानां नलिनीवनानां
चन्द्रोदयानांङ्कुमुदाकराणाम् ।
जनावलीनां रुचिरां श्रियं ये
संशिश्रियुस्ते शुभदा दृगन्ताः ॥६३॥

येष्वग्रदूतेष्विव लब्धवार्तः
साकेतवासी सकलोऽपिलोकः ।
इन्दूदयेऽम्भोधिरिवोल्ललास
श्रियै सतां ते रुचिराः कटाक्षाः ॥६४॥

दूरात्प्रणम्यैव गुरूञ्छ्वशुर्यान्
श्वश्रूं सुमित्रां च पदोर्निपत्य ।
पश्यन्ति ये केकयराजपुत्रीं
श्रियै सतां ते स्म सतीकटाक्षाः ॥६५॥

सीताकटाक्षास्तव सन्तु लक्ष्म्यै
क्षणे क्षणे यैर्नवतामुपेतैः ।
रत्यग्रदूतैरिव भाग्यलब्धै-
रमानिवासो रमतेस्म रामः ॥६६॥

स बालवृद्धाननुचिन्त्यलोकान्
बधूजनं ये प्रथितावदानाः ।
पश्यन्ति रामाधिकजातहर्षास्
सीता कटाक्षा इह ते श्रिये वः ॥६७॥

येषां कृते चन्द्रमुखीमुखानि
व्याकोशहेमाम्बुजसन्निभानि ।
सुमेरुशृङ्गादवतीर्य्य पुर्याः
प्रान्तेषु सौस्नातिकतां विलेषुः ॥६८॥

यैश्चन्द्रिकाचूर्णितचारुकान्तिः
प्रकामरम्यैः पुनरुद्धृतार्था ।
लोकं समाह्लादयति द्विरात्मा
सीताकटाक्षाः खलु ते श्रिये वः ॥६९॥

चन्द्रेण चूर्णीकृतचारुभासा
नीराजनां ये गमिताः सरोषाः ।
स्वेनैव खे गोमयलाञ्छितेन
श्रियै सतां ते कुलजाकटाक्षाः ॥७०॥

ये हेमसिंहासनसन्निकर्षं
वाराङ्गनाभिर्विनयेन नीताः ।
तासां ददुर्लोक विमोहमन्त्राँ-
स्ते वः श्रियै सन्तु सतीकटाक्षाः ॥७१॥

रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितैर्ये
संस्नापितास्तीर्थजलैः सुपुण्यैः ।
ब्रह्मर्षिदेवद्विजराजमुख्यैः
शिश्वेतिरे ते शुभदा दृगन्ताः ॥७२॥

समुद्रकल्पेऽपि कपीन्द्रसैन्ये
रत्नं समन्विष्य न ये लभन्ते ।
पतन्ति पश्चात्त्वनिलात्मजाङ्गे
श्रियै दृगान्तास्तव ते रमायाः ॥७३॥

रामेरिता ये पवनोद्भवाय
मालां मणीनां प्रियताभिमानात् ।
दिव्यामदुः सस्मितमीक्ष्य कान्तां
ते वः श्रियै सन्तु सतीकटाक्षाः ॥७४॥

ते वः श्रियै सन्तु सतीदृगन्ता
ये रामभद्राननशोभिनोऽपि ।
पश्यन्ति वातात्मजसन्निकर्षं
चन्द्रोदयारम्भमिवाधिहर्षम् ॥७५॥

रामोऽपि यत्प्रत्युपकारवाञ्छां
जहौ सचेताः परमासमर्थः ।
तस्यार्तिं ये जनयन्ति वायो-
स्ते वः श्रियै केचन श्रीदृगंशाः ॥७६॥

मधुश्च्युतामप्यमृतोद्वृषां ये
वाल्मीकिवाचामतिशायनाय ।
श्लिष्यन्ति रागादिव तस्य सूक्तीः
श्रियै श्रियस्ते विशदा दृगंशाः ॥७७॥

पीयूषयूषस्वरसातिशायि
सौभाग्यमाद्यस्य कवेः सुवाचाम् ।
समेधयन्ते बत येऽनुभावा-
त्ते वः श्रियै भूकमलादृगन्ताः ॥७८॥

येषांङ्कृते काव्यजुषां कवीन्द्रा
अन्येऽपि वाचं परितो यजन्ते ।
ते वः श्रियै स्युर्नयनान्तभागा
विदेहजायाः कमलाक्षिलक्ष्म्यः ॥७९॥

अरुन्धतीदर्शितमूलमन्त्रा-
न्यायेन ये वा स्वमिवोनयन्ते ।
वशिष्ठशिष्यस्य न ये नृपर्षेस्
ते वः श्रियै भूकमलाकटाक्षाः ॥८०॥

लक्ष्म्याश्रयैः श्रीविनयोपपन्नैस्
स्वराजधर्मोत्तमधारकस्य ।
रामस्य धैर्यं विनिभालितं यै-
स्ते वः श्रियै श्रीरुचिराः कटाक्षाः ॥८१॥

रामस्य पादौ परितश्चरन्तः
पत्युर्न ये किञ्चन संस्मरन्ते ।
कान्तारवासेऽपि तु राजलक्ष्म्या-
स्ते वः श्रियै भूतनयादृगंशाः ॥८२॥

कान्तारवासं पितृराज्यभङ्गं
प्रियावियोगं समवाप्य रामः ।
येषां कृते नैव जहौ स्वधैर्य्यं
ते वः श्रियै स्युर्मिथिलादृगन्ताः ॥८३॥

वाग्देवतायाः परमाश्रया ये
काव्यं कवीन्द्रस्य विवर्धयन्ते ।
आनन्दवार्धौ विनिमज्जयन्तस्
ते वः श्रियै मैथिलजादृगंशाः ॥८४॥

यै रङ्गलग्नैर्मदनास्त्रविद्धो
रामः प्रभातेऽप्यरुणोदयेऽपि ।
निर्य्याति गेहान्न विदेहजाया-
स्ते वः श्रियः सन्तु चलाः कटाक्षाः ॥८५॥

येष्वङ्गलग्नेषु सकामकामो
रामः प्रभातेऽप्यरुणोदयस्य ।
प्रकाशमुद्वाञ्छति चन्द्रकीयं
ते वः श्रियं सन्तु सतीकटाक्षाः ॥८६॥

अङ्गीकृतो यैः सुरसुन्दरीणां
नीलोत्पलानां न च खञ्जनानाम् ।
सस्मार रामो हरिणाङ्गनानां
ते वः श्रियै सन्तु सतीदृगन्ताः ॥८७॥

निजाङ्गलग्नेषु स येषु रामो-
ऽप्यनङ्गबन्दीकृतमानसङ्गी ।
गोपायति स्वारतिवावभङ्गीः
सख्युः श्रियै, ते मिथिलाकटाक्षाः ॥८८॥

चण्डि त्वमेवास्य जनस्य जीव-
सञ्जीविनी कुप्यसि किं मुधैव ।
इत्याह रामोलपति स्म चित्रे
स्वप्नेऽपियाँस्ते शुभदा दृगन्ताः ॥८९॥

अलं ह्रिया मां प्रति नाहमन्य-
स्त्वत्तोऽस्मि वामे जितकामरामे ।
रामेण येषामनुनीतिरित्थं
कृता श्रियै वः खलु ते कटाक्षाः ॥९०॥

२९

गूढाशये गाढमिवोपगूढास्
सख्योऽपि ते मे न निवेदयन्ते ।
कथं कृतार्थो रतिसुन्दरः स्या-
द्युवा युवत्यास्तवदृष्टिवृष्टया ॥९१॥

आलिङ्गनं नैकमवाप्य रामो
जातः सकामो व्यपसर्त्तुमद्धा ।
चकार यः स्वं सहसैव दम्भात्
पात्रं हि ते दन्तनखक्षतानाम् ॥९२॥

रुष्टासि चेद्दण्डयितुं यतस्व
प्रिये प्रियं कामुकदुर्विनीतम् ।
इत्यादि रामेण धृताभ्यनुज्ञाः
श्रियै विदेहेश्वरजाकटाक्षाः ॥९३॥

उत्सङ्गलोलौ स्तनयोः पिबन्तौ
शिशू कवीन्द्रस्य कुशीलवौ यान् ।
अपश्यतामादरनिर्निमेषं
सतां श्रियै ते जननीकटाक्षाः ॥९४॥

प्रगृह्यबाह्वोः स्तनयोः प्रविश्य
निर्भुज्य बिम्बं पदयोर्निपत्य ।
आलोकते या ननु कोऽपि रामः
श्रियै सतां ते कमलाकटाक्षाः ॥९५॥

उदूह्य ये कल्पलतां जनेभ्यः
फलानि दत्त्वा सहसोत्रपन्ते ।
तद्योग्यतायामिवसंशयाना-
स्ते वः श्रियै मैथिलजादृगंशाः ॥९६॥

ललाटलग्नालकलाञ्छितं ये
वक्त्रेन्दुबिम्बं स्वमथार्पयन्ति ।
रामेभ्रमद्भृङ्गमिवाढ्यपद्मं
ते वः श्रियै भ्रूचतुराः कटाक्षाः ॥९७॥

मुखेन्दुबिम्बं स्तनमण्डलं वा
केशान्धकारं जघनं नितम्बम् ।
निर्विश्य रामो नमते स्म येषां
ते वः श्रियै श्रीकुटिलाः कटाक्षाः ॥९८॥

घनान्धकारोदितिपूर्णचन्द्रं
प्रिये कथं ह्रेपयितृ त्वदास्यम् ।
स्मितं न चेत्स्वीकुरुषे नितान्तं
विज्ञापिता ये प्रभुणा वरेण ॥९९॥

कलिन्दकन्याकलिताङ्गसङ्गां
मन्दाकिनीं स्वः सुधयोत्तरङ्गाम् ।
प्रवर्तयामासुरिवोन्मुखीनां
ते वः श्रियै श्रीकमलाकटाक्षाः ॥१००॥

कृतं कटाक्षशतकं श्रीकान्तपतिशर्मणा ।
सज्जनानन्ददानाय श्रीसीतारामयोर्मुदे ॥१०१॥

प्रकीर्णश्लोकाः

न कृतमिदं मम तेन हीति वाणीं
त्रिषु सगणेषु निनाय नावकाशम् ।
विधिविरचितचारुरत्नमेनं
क इह पुमान्मतिमानथाजुहोतु ॥१॥

प्रतिपदमनुगम्य लोकयात्रां
न खलु मुकुन्दपदं व्यचिन्तयस्त्वम् ।
मम हृदय न यास्यतः प्रशान्ति
यदि न कथंचन नास्ति कस्य दोषः ॥२॥

यत्पादाम्बुजचञ्चरीक तुलनां विन्दन्त्यमन्दादरा-
दानन्दाश्रुपरिप्लुताक्षिदिविषद्वन्द्याः सुरेन्द्रादयः ।
यश्चान्द्रायकलयास्वयामृतजुषा दृष्ट्याभिवृष्यक्षणा-
ल्लोकान्ह्लादयतीह भव्यभवनं स्वेषां स मायाधवः ॥३॥

उल्लासो मारवध्वाश्चिरमभिलषितोत्कण्ठितं मेनकायाः
कामावाप्तिर्हिमाद्रेर्भयमसुरकुलस्याभयं निर्जराणाम् ।
साफल्यं शैलपुत्र्याः सुचरिततपसां भक्तलोकानुनीतिः
प्रीतिर्देवस्य वः स्यादचलगृहगतिः पावनी कल्यवेषा ॥४॥

पार्वत्याः पाणिसंस्पर्शं रुन्धतः पुलकोत्करान् ।
प्रह्वयन्तो विभूत्यै वः शम्भोः स्वेदोदबिन्दवः ॥५॥

चन्द्रश्रीविसरप्रकर्षमभितः सासुर्नसा पश्यति
प्रष्ठा कालविचिन्तयैव मदनं द्राक्कालितुं तिष्ठति ।
यन्नान्तन्नु गतं न नाम ःमनसः कुव्यञ्जनं नाभिकं
कं कुर्य्याच्चलितप्रधि न यतिनं तिग्मातितिग्मः स कम् ॥६॥

चक्रबन्धः (श्रीकान्तपतिनारचितं सुकाव्यम्) इत्युद्धारः ३, ६ पङ्क्त्योः ॥

सा मे पदोर्निपत्यालीं प्राह वामा रुजान्विता।
किं मे न दोषः पद्मालीं तां हसेन्मां तु जामिता ।७॥

गोमूत्रिका

राजताल्पिकहावेभा भावेहाकल्पिताजिरा।
राजतेऽदमसन्तापाऽऽपाता सम्मद ते जरा ॥८॥

गत-प्रत्यागतचरणः

मदतेऽदमते जाया या जाते मदते दम।
मोदते ममतां हित्वास्वाहितां मम ते दमः ॥९॥

न समां सहतेधीरो रोधी ते हस मां स न।
काभितापहितायासा सायाताहिपताभिका ॥१०॥

राधिका कल्पते विद्यां धावितेऽल्पककाधिरा।
राजते तवसारागीर्गीराशा बत ते जरा ॥११।

अनुलोमप्रतिलोमचरणाः

मायादिनादिरजनीव दिनादि यामा
सा मां सदासमपि नैति सदासमां सा।
वेशाङ्गना सधनमाप्य सनाङ्गशावे
मारायसार सुजनेऽसिरसायरामा ॥१२॥

सरासहासललितातिसहासरासा
मारायसारवचनाऽपि रसायरामा।
काराधिकाररमणी नरकाधिराका
याजाभितेव भविता भवतेऽभिजाया ॥१३॥

राजानवीनपुरमेत्य नवीनजारां
वाराङ्गनां च वचने वचनाङ्गरावाम् ।
साहन्तयाविरहितामवियातहंसां
धाराधिनानुमनुते ननु नाधिराधाम् ॥१४॥

मायासकारिकजनी करिका सयामा
नालीव लीनमहितामनलीकलीनाम् ।
धावन्निषङ्गसरसां सगसन्निबन्धां
काहं करोमि न कथां न मिरोकहं का ॥१५॥

अनुलोम-प्रतिलोम संपुटश्लोकाः

निष्पीड्याम्भोजमर्दं गिरिवरमचलं प्रोत्पतन्नभ्रमेको
लङ्कां गन्तुं निहन्तुं दशमुखतनयं जानकीं द्रष्टुमेतुम् ।
व्योमन्यम्भोधिबिम्बेऽनल इव वडवाप्रोथितो यो बभासे
तं कश्चिन्नौमि रामे धृतसरसमतिं मारुताख्यं कपीन्द्रम् ॥१६॥

प्राणत्राणक्षणस्त्वं सुरनरनिरतप्रीतिरीतिप्रतिष्ठा
नीरक्षीरर्त्तिरद्धा सकलकलकलाधारयन् रङ्गरञ्जी ।
नायं नायं नयं यो भवसि वशवलीराजसं जन्मजन्तून्
वेदं वेदं सदंभं परिहरितरिवत्तारयन्नम्यरन्ध्रान् ॥१७॥

हारबन्धः

सायामकीर्त्तिविहितामपि तां मयासा
दारायते न तरुणीतरणायरादा ।
मारान्तिके रतिसमा न मदन्तिरामा
सालालका कलकलाकुललोललासा ॥१८॥

अनुलोमप्रतिलोमसंपुटितः

राधासाधिधिसाधारा धामनाममनामधाः ।
सानामहाहामनासा धिमहाततहामधि ॥१९॥

किं दृष्टयाऽस्य न पौष्पमेतदतुलं किं मेऽथ बाह्वोर्बलं
प्रत्यञ्चा तु पुरारिणैव मृदितोच्चां कोटिमारोपिता ।
नाऽऽकृष्यं नहि कोऽपि संप्रति रिपुर्गर्वो भृगोर्मूर्त्तिमा-
नित्येवं प्रबभञ्ज सेश्वरधनुर्मायापती राघवः ।।२०।।

रूपे स्निह्यति तद्रूपे तदतन्नावबुध्यते ।
अतत्तदिति गृह्णाति हाहा मोहपरम्परा ।।२१।।

विषयैर्ग्राहनीकाशैः सर्वथा प्रत्युपद्रुतः ।
मोहजाले पतन्नात्मा स्वात्मानं नावबुध्यते ।।२२।।

जयतु स शशिमौलिर्यस्य साधोः प्रियायाः
सललितपरनारीसङ्गरङ्गप्रसङ्गे ।
प्रकृतिहृतकटाक्षस्यास्तदोषाभिषङ्गो
ह्युदयति न पराङ्गः सोऽहमस्मीति भावः ।।२३।।

इति श्रीकान्तपतित्रिपाठिना कविरेण कृतः
श्रीकान्तकविताकलापः समाप्तः ।।